Cost: *Rs. 35/-*
Bhiwandi. 26-8-2002

श्री वीतरागाय नमः
श्री महावीराय नमः

जैन शब्दार्थ कोश

※ संकलन कर्ता ※
सूरजमल खासगीवाला, (भिवंडी)
टे. न. ५५८८४

※ मुद्रक ※
मयुरी प्रिन्टर्स, थाना.
✆ : ५४२ २०६३

मुक्त जीव

विषय सुख विरक्त, शुध्द तत्वानुरक्त,
तप में तल्लीन चित्त, श्रुति समूह मस्त।
गुण मणि गण युक्त, सर्व संकल्प मुक्त,
कहो मुक्ति सुन्दरी के, क्यों न होंगे वो कंत ।।

- मुनि पद्मप्रभमल धारी देव

समर्पण



स्व. श्रीमती प्रेमलता सूरजमल खासगीवाला
की पुण्य स्मृति में ....
स्वर्गवास : २९-७-१९९४

आत्म- वंदना

१) विपरीत मान्यताओं में रह, मैंने अपार भवदुःख पाया ।
मोहों के बन्धन में बंदी रह कर न कभी कुछ सुख पाया ।।
२) सिंह विचरता है जिस पथ में , उस पर हिरण नहीं जाते ।
सिंह वृत्ति से शूरवीर मुनि, मोक्ष मार्ग को अपनाते ।।
३) सिद्ध समान परम पद अपना, यह निश्चय कब लाओगे ।
द्रव्य दृष्टी बन निज स्वरुप को, कब तक और सजाओगे ।।
४) आत्म स्वरुपावलंबन भावों से, विभाव परिहार करो ।
रत्नत्रय का वैभव पाकर, भव दुःख सागर पार करो ।।
५) संवर भाव जगाओगे तो, आश्रय बंध रूकेगा ही ।
भाव निर्जरा अपनायी तो, कर्म निर्जरित होगा ही ।।
६) दर्शनीय, श्रवणीय आत्मा, वन्दनीय मननीय महान ।
शांति सिंधु सुख सागर अनुपम, नव तत्वों में श्रेष्ठ प्रधान ।।
७) भव बीजांकुर पैदा करनेवाला, राग द्वेष हर लूँ ।
वीतराग बन साम्य भावसे, इस भव का अभाव हर लूँ ।।
८) मिथ्यातम के जाये बिन, सच्ची सुख शांति नहीं होती ।
सम्यक्दर्शन हो जाने पर, फिर भव भ्रांति नहीं होती ।।
९) सह अस्तित्व समन्वय होगा, संयममय अनुशासन से ।
सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय शील के शासन से ।।
१०) निज में जागरूक रह, पंच प्रमादो पर तुम जय पावो ।
अप्रमत्त बन निज वैभव से, सहज पूर्णता को लावो ।।
११) जो निवृत्ति की परम भक्ति में, रहता है तल्लीन सदा ।
सिध्द वधु के दिव्य मुकुट पर होता है आसीन सदा ।।
१२) संयम तप वैराग्य न जागा, तो फिर तत्त्व मनन कैसा ।
निज आतम का भानु न जागा, तो फिर निज चिंत्तन कैसा ।।
१३) निज स्वरुप में थिर होना ही है सम्यक् चारित्र प्रधान ।
परम ज्योति आनन्द पूर्णतः है सम्यक् चारित्र महान।।
१४) एक समय के सामयिक में कितनी शक्ति भरी ।
अल्प काल में मुक्ति प्राप्त हो ऐसी युक्ति खरी ।।
१५) आत्म भ्रांति के महारोग की औषधि है यथार्थ श्रध्दान ।
सम्यक् दर्शन के बिन होता, कभी न जीवो का कल्याण ।।
१६) तत्त्वज्ञान पूर्वक निजात्मा का, यथार्थ श्रध्दान करो ।
तत्त्वज्ञान कर महामोक्ष मंगलपथ परअभियान करो ।।

१७) प्राण जाये पर धर्म न जाये, यह निज कुल की रीत है ।
जिन आज्ञा अनुसार चले जो, उसे धर्म से प्रीत है ।
१८) शुध्दातम के अवलोकन से, होती प्रकट शुध्द पर्याय ।
द्रव्य दृष्टी जब होती है तो, होता भेद-ज्ञान सुखदाय ।।
१९) आत्म भान के बिना न होता है, सम्यक् व्यवहार भी ।
आत्मज्ञान के बिना न होता, निज आतम से प्यार भी ।।
२०) सकल जगत में नव पदार्थ में, सार भूत है आत्मा ।
अलख, अरूपी, अमित तेजमय, ज्ञान भूत है आत्मा ।।
२१) प्रथम अनादिकाल के मिथ्याभ्रम को विध्वंस करो ।
पीछे तुम रागा दिक भाव का गढ़ विध्वंस करो ।
२२) अनन्तानुबंधी के क्षय बिन, कैसा व्रत संयम ।
समकित के बिन कैसा जा सकता है मिथ्यातम ।।
२३) है संयोग शरीर आत्मा का, पर दोनो भिन्न है ।
एक क्षेत्र अवगाही रहकर, निज में सदा अभिन्न है ।।
२४) जो चारित्र भ्रष्ट है वह तो एक दिवस तर सकता है ।
पर श्रध्दा से भ्रष्ट कभी भव पार नहीं कर सकता है।।
२५) चौरासी के चक्कर से बचना है तो निजध्यान करो ।
नव तत्वों की श्रध्दा पूर्वक स्व-पर भेद-विज्ञान करो ।।
२६) जीव स्वयं ही कर्म बांधता, कर्म स्वयं फल देता है ।
जीव स्वयं पुरुषार्थ शक्ति से, कर्म बंध हर लेता है ।।
२७) निज तत्वोपलब्धि के बिन, सम्यकत्व नहीं होता ।
सम्यक्त्वोपलब्धि के बिन, सिध्दत्व नहीं होता ।।
२८) राग आग में जलजल तूने कष्ट अनंत उठाये है ।
भाव शुभाशुभ के बन्धन में, आँसू सदा बहाये है ।।
२९) इस भव वन में उलझे रहते तो जिनवर अरहंत न होते ।
ज्ञाता, दृष्टा, शुध्द स्वरुपी मुक्तिकंत भगवंत न होते ।।
३०) आत्म सूर्य को जो प्रगटाये, उसे धर्म कहते है ।
भवबन्धन में जो उलझाये, उसे कर्म कहते है ।।
३१) आत्मज्ञान वैभव यदि हो, सदाचार शोभा भाता है ।
पंच परावर्तन अभाव कर, चेतन मुक्ति गीत गाता है ।।
३२) आत्म भूत लक्षण सम्यक् दर्शन का, स्व-पर भेद विज्ञान ।
समकित होते ही होती है, निर्विकल्प अनुभूति महान ।।

श्री वीतरागाय नमः

जैन शब्दार्थ कोश

णमो अरि हंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं ।

मोक्ष के नव (९) मूल

त्रैकाल्यं द्रव्य-षटकं नव पद सहितं, जीव षट काय लेश्याः ।
पञ्चान्ये चास्तिकाया, व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्र भेदाः।।
इत्येतन्मोक्ष मूलं त्रिभूवन महितैः प्रोक्त मर्हद भिरीशेः ।
प्रत्येति श्रध्द धाति स्पृशति च मतिमान यः सवै शुद्ध दृष्टिः।।

तत्त्वार्थ सूत्र
(आचार्य उमास्वामी /गृद्धपिच्छ)

मोक्ष के ९ मूल :-

१) तीन काल २) छह द्रव्य ३) नव पदार्थ ४) षटकाय जीव
५) षट लेश्या ६) बारह प्रकार के व्रत ७) पांच समिति
८) गति-ज्ञान चार ९) चारित्र के पांच भेद ।

प्रस्तावना



श्री जिनेन्द्र देव की असीम कृपा से मैं यह शब्दार्थ कोश तैयार कर सका । इसमें शास्त्रों में जो कठिन कठिन शब्द, वाक्य आते है उनका इस कोश में शब्द के साथ साथ अर्थ अन्वयार्थ, और कहीं कहीं संक्षिप्त विवेचन भी किया है । यह अलग अलग शास्त्रों को पढ़कर संकलित किया है । इसमें मुख्यतया संग्रह मुनि प्रमाण सागरजी की पुस्तक "जैनतत्व विद्या" व क्षु. जैनेन्द्र वर्णीजी के "जैनेन्द्र सिध्दांत कोश"(पांच भाग) और आर्यिका ज्ञानमति माताजी की पुस्तक "दिगम्बर मुनि "और इसके अलावा दूसरे ग्रंथो से भी संकलन किया गया है, वे निम्न प्रकार है । इसमें करीब २६०० शब्दों का संकलन किया है । जो श्री भगवान महावीर के २६०० वें जन्मकल्याणक के महोत्सव वर्ष के अनुरुप ही इस शुभ अवसर पर प्रेषित है । १) षटखण्डागम २) समयसार ३) मूलाचार ४) णमोकार ग्रंथ ५) ग्रंथराज श्री पंचध्यायी ६) तत्वार्थ सूत्र (मोक्षशास्त्र) ७) रत्नकरण्ड श्रावकाचार ८) द्रव्य संग्रह इत्यादि इत्यादि । इस कोश से त्यागीगण और ज्ञानीवर्ग को शास्त्र अध्ययन में शब्दो के अर्थ समझने में सहायक होगा । इसमें शुध्दता का विशेष ध्यान रखा गया है फिर अगर कहीं त्रुटि दिखे तो मुझे अल्पज्ञ समझकर क्षमा करे और सुधारकर पढ़ने की कृपा करेंगे ।

संकलनकर्ता:-

सूरजमल मूलचंद खासगीवाला (बी.काम.)

प्रतापगढ़ निवासी और भिवंडी प्रवासी

पता : घर नं. ३२०, गोकुलनगर, आदर्श सोसायटी,

ए विंग, पहला माला, फ्लेट नं. ७, भिवंडी - ४२१३०२

(जि. ठाणे). टे. फोन. नं. ५५८८४

जैन - शब्दार्थ - कोश (शब्द - अर्थ)

अ

अकामी	इच्छा रहित - विषयों का त्यागी ।
अकाम निर्जरा	जिन कर्मो को तपश्चरण द्वारा क्षय किया जाता है ।
अकालाध्ययन	सम्यग्ज्ञान का एक दोष ।
अंकित	युक्त ।
अकिंचितकर	व्यर्थ ।
अकिंचित हेत्वाभास	जो साध्य स्वयं सिध्द हो अथवा प्रत्याक्षादि से बाधित हो, उस साध्य की सिद्धि के लिये यदि हेतु का प्रयोग किया जाता है तो वह अकिंचित कर कहा जाता है ।
अक्रमिकता	क्रम पूर्वक विवेचन कर न पाना ।
अक्रमवृत्ति	क्षायिक ज्ञानवाली वृत्ति ।
अक्रमवर्ती	स्वभाव दृष्टि ।
अक्रम	युगपत ।
अकृतज्ञान	जो किसी के द्वारा नहीं किया गया ऐसा स्वाभाविक ज्ञान
अकृत	अभ्यागम दोष या हेत्वाभास ।
अंकुर	सार भाग ।
अकल्प्य	अयोग्य
अकुलीन	अपूज्य
अकषाय	(नोकषाय) - ईषत (थोड़ी) कषाय को अकषाय कहते है ।
अखण्डित	परिपूर्ण ।
अंगुलिदोष	कायोत्सर्ग करते समय अंगुलियों से गणना करना ।
अगुण	दोष ।
अग्नि	आवा, आग
अगम्य	छुपा हुआ ।
अग्र	मुख – सहारा – अवलम्बन आश्रय, प्रधान वा सम्मुख अर्थ है।
अग्रबीज	जिन वनस्पतियोंका बीज उनका अग्र भाग होता है उन्हे अग्रबीज कहते है ।
अग्रायणी	द्वादशांग के वस्तु के ज्ञान को अग्रायण कहते है और उसका कथन करना अग्रायणी पूर्व है ।
अग्रेसर	प्रधान ।

अगुण	दोष ।
अगुरुलघुत्वगुण	द्रव्य का वह गुण जिसके कारण वह अपने स्वरुप में अवस्थित रहता है । इस शक्ति के निमित्त से द्रव्य की द्रव्यता कायम रहती है ।
अगुरु लघु	न भारी न हलका ।
अगुरु लघु नामकर्म	जो कर्म शरीर को न तो लौह पिंडकी तरह भारी, न ही रुई के पिंड की तरह हल्का होने दे, वह अगुरु लघु नाम कर्म है।
अगृहीत	स्वाभाविक । जो पुद्गल पहले ग्रहण न किये हो, उन्हे अगृहीत कहते है ।
अगृहीत मिथ्या दर्शन	ये सात (७) तत्व प्रयोजन भूत (मतलब के) तत्व है, उनमें उल्टा विश्वास करना अगृहीत मिथ्यादर्शन है ।
अगृहीत मिथ्या ज्ञान	मिथ्या दृष्टि जीव - पांचो इन्द्रियों की इच्छा को नहीं रोकना और आकुलता के अभाव को नहीं मानना, ऐसी उल्टी श्रध्दा सहित जो कुछ थोड़ासा ज्ञान है, वह अगृहीत मिथ्याज्ञान है ।
अगृहीत मिथ्या चारित्र	जो पांचो इन्द्रियों के विषय में अगृहीत मिथ्या दर्शन और अगृहीत मिथ्याज्ञान पूर्वक प्रवृत्तिकरना वह अगृहीत मिथ्या चारित्र है ।
अगृहीतार्थ विहार	जीवादि तत्वों को न जानकर चारित्र का पालन करते हुवे जो मुनियों का विहार हैं वह अगृहीतार्थ विहार है ।
अगाढ़ सम्यग्दर्शन	जिस सम्यग्दर्शन के होते हुए भी अपने बनवाये हुए मन्दिरादि में यह मेरा मंदिर है आरै दूसरे के बन वाये हुए मन्दिरादि में यह दूसरे का है ऐसा भाव हो उसको अगाढ़ सम्यग्दर्शन कहते है ।
अघकर्म दोष	अपने निमित्त स्वतः भोजन तथा उसकी सामग्री तैयार करना अघकर्म दोष है ।
अघातियाँ	जो जीव के प्रतिजीवी गुणों का घात करता है ।
अघातियां कर्म	ये आत्म गुणों का सीधे घात तो नहीं करते, फिर भी भव भ्रमणा कराने में इनका पूरा पूरा हाथ रहता है ।
अघोर ब्रह्मचारित्र ऋद्धि	जिस ऋद्धि के प्रभाव से मुनि के क्षेत्र में ईति-भीति, महामारी और दुर्भिक्ष शांत हो जाते है वह अघोर ब्रम्हचारित्र ऋद्धि है ।
अघाति कर्म की ३ परिभाषायें	१. जो आत्मा के अनुजीवी गुणों के घात में निमित्त न हो । २. जो आत्मा के प्रतिजीवी गुणों के घात में निमित्त हो । ३. जिनके निमित्त से जीवको पर वस्तु का संयोग वियोग हो ।
अर्घ	मूल्य ।

अचेतन	जड़।
अर्चन	पूजा करना ।
अचिदात्मा	अजीव ।
अचपक	बैराग्य -अरुचि ।
अचल प्र	काल का प्रमाण विशेष ।
अचित्त	भक्ष्य पदार्थों का सचित्ता चित्त विचार ।
अचक्षुदर्शन	नेत्रेन्द्रिय के बिना शेष इन्द्रियों द्वारा होनेवाला सामान्य प्रतिभास अचक्षु दर्शन है ।
अचित्त पूजा	तीर्थंकर के शरीर (प्रतिमा) की और द्रव्य श्रुत (लिपीबध्द -शास्त्र) की पूजन करना अचित्त द्रव्य पूजा है ।
अचौर्य महाव्रत	किसी की भूली रखी या गिरी हुई वस्तु को स्वयं नहीं लेना तथा दूसरों के द्वारा बिना दी गई ऐसी योग्य वस्तु को भी नहीं लेना अचौर्य व्रत है ।
अचल	अकंप ।
अचेलकत्व	सूती, रेशमी आदि वस्त्र, पत्र, वत्कल आदि का त्याग कर देना, नग्न वेश धारण करना अचेलकत्व है ।
अचेत	बेखर ।
अ	ईषत - थोड़ा ।
अछेद्य	वस्तिका दोष ।
अछद्मस्थ	केवली
अजीव	जिसमें ज्ञान, दर्शन (चेतना) न हो उसे अजीव कहते है- जड़ ।
अजीव तत्व	जीव द्रव्य के साथ जो पौद्‌गलिक संयोग अवस्था है । वह अजीव तत्त्व है।
अजीव द्रव्य	जीव द्रव्य के साथ पुदगल का सम्बन्ध नहीं है उसे अजीव द्रव्य कहते है ।
अजीव विचय धर्मध्यान	अजीव द्रव्यों के स्वरुप का चिंतन ।
अटट	काल प्रमाण का एक विकल्प ।
अणुव्रत	हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह से एक देश निवृत्त होना, अणुव्रत है ।
अणिमा महाऋद्धि	अपने शरीर को अणु की तरह छोटा बना लेने की सामर्थ्य ।
अणिमा विक्रियाऋद्धि	अपने शरीर को अणु की तरह छोटा बना लेने की सामर्थ्य ।
अण्डज जन्म	जो जीव अण्डज से पैदा होते है उसे अण्डज जन्म कहते है।

अतिक्रम	अतिचार का दूसरा नाम ।
अतिथि मुनि	अन्य संघ से विहार करते हुवे आये मुनि को अतिथि मुनि (पादोष्ण) कहते है ।
अतिथि संविभाग व्रत	संयम के अनुपालक अतिथि जनों को अपने लिये बनाये गये भोजन में से विभाग करके आहार प्रदान करना अतिथि संविभाग व्रत है ।
अतिवाहन	अधिक लाभ की आकांक्षा से शक्ति से अधिक दौड़ धूप करना और दूसरों से भी नियम विरुध्द अधिक काम लेना अतिवाहन है।
अतितृष्णा	आगामी विषयों के प्रति अध्याधिक तृष्णा रखना।
अतीन्द्रिय वस्तु	आत्मा
अति विस्मय	अपने अधिक लाभ को देखकर अहंकार में डूब जाना तथा दूसरों के अधिक लाभ में विषाद करना, जलना, कुढ़ना
अति अनुभव	तीव्र भोगा शक्ति के कारण असमय में भी भोगों का भोग करना ।
अतिभार वहन	लोभ के वश होकर किसी पर न्याय नीति से अधिक भार डालना अति भार वहन है ।
अति प्रसाधन	भोगोपभोग की सामग्री का आवश्यकता से अधिक संग्रह करना
अतिवीर	भगवान का अपर नाम ।
अति लौल्य	अत्यन्त कामातूर और विषय लोलुपी बनकर बार बार भोगों की इच्छा रखना ।
अतुल्य	अतीन्द्रिय सुख ।
अतिक्रमण	मन की शुद्धता में हानि होना अतिक्रमण है ।
अतिक्रांत	चतुर्दशी के दिन किया जाने वाला उपवास प्रति प्रदा आदि में करना यह अतिक्रांत प्रत्याख्यान है ।
अतिशय	सर्व साधारण प्राणियों में नहीं पाई जानेवाली अद्‌भूत या अनोखी बात को अतिशय कहते है ।
अतिचार प्रतिक्रमण	दुःस्वप्न आदि अतिचार सम्बन्धी प्रतिक्रमण अतिचार प्रतिक्रमण है (रात्रिक मे) ।
अतिचार	व्रत के आचरण में शिथिलता होना या व्रत के एकदेश भंग होना अर्थात दूषण लगना अतिचार है (प्रतिज्ञा का आंशिक खण्डन)
अत्यान्ताभाव	एक द्रव्य के दूसरे द्रव्य में अभाव को अत्यान्ताभाव कहते है ।
अर्थसम्यकत्व	वचन विस्तार के बिना केवल अर्थग्रहण से उत्पन्न तत्त्व श्रद्धान
अर्थाचार	शास्त्र की आवृत्ति मात्र न करके उसका अर्थ समझकर पढ़ना ।

अर्थ पर्याय	जो पर्याय सूक्ष्म होती है, इन चर्म चक्षुओं से देखी नहीं जाती है, जिसके बदल जाने पर भी द्रव्य के आकार में कोई परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता और जो केवल वर्तमान समय में होती है वह अर्थ पर्याय है ।
अर्थावग्रह मतिज्ञान	इसमें वह कुछ पदार्थ का बोध हो जाता है ।
अर्थावग्रह	व्यक्त (प्रगट) पदार्थ के अवग्रह ज्ञान को अर्थावग्रह कहते है ।
अर्थ	भावार्थ जो हो वैसा समझना ।
अर्थ संक्रांति	एक अर्थ (पदार्थ) से दूसरे अर्थ की प्राप्ति होना अर्थ संक्रांति है ।
अर्थशुद्धि	पदों का अनेकांत रूप अर्थ करना ।
अद्वैत	अद्‌भूत
अदंत धावन	नीम की लकड़ी आदि से दंत मंजन आदि नहीं करना । अदंत धावनव्रत है । दांतो को नहीं घिसने से इंद्रिय संयम होता है ।
अदर्शन	लोप
अदीक्षा ब्रह्मचारी	जो ब्रह्मचारी के वेश में बिना ही शास्त्रों का अध्ययन कर गृहस्थ धर्म में प्रवेश करते है वे अदीक्षा ब्रह्मचारी है।
अदृष्टमृष्टग्रहण	उपकरण आदि वस्तुओं को बिना देखे शोधे ग्रहण करना । (अप्रत्यावेक्षिता - प्रमार्जितादान)
अदृष्टमृष्ट विसर्ग	बिना देखी शोधी भूमि पर मलमूत्र का त्याग करना । (अप्रत्यक्षेक्षिता - प्रामार्जितोत्सर्ग)
अदृष्टमृष्ट आस्तरण	अपनी दरी, चटाई आदि को बिना देखे शोधे बिछाना (अप्रत्यावेक्षिता-प्रमार्जित-संस्तरोपक्रमण)
अदत्तग्रहण अंतराय	दाता के दिये बिना आहार, औषधि आदि ग्रहण करने पर।
अदृष्टवंदना दोष	आचार्यादि न देख सके ऐसे स्थान पर जाकर अथवा भूमि शरीरादि का पिच्छी से परिमार्जन न कर वन्दना में एकाग्रता न रखते हुवे वन्दना करना या आचार्यादि के पीछे जाकर वंदना करना ।
अर्द्धनाराच संहनन	एक तरफ कीले हों ।
अर्द्धच्छेद	किसी राशि को जितनीबार आधा आधा करने से एक शेष रहे उसको अर्द्धच्छेद कहते है ।
अध्यवसान के पर्यायीनाम	बुद्धि, व्यवसाय, अध्यवसान, मति, विज्ञान, चित्त, भाव, परिणाम ।
अधिगमज सम्यग्दर्शन	परोपदेश पूर्वक उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दर्शन अधिगमज सम्यग्दर्शन है ।

अध्यवसाय	एकत्व बुद्धि
अध्यवसान	रागादि (शुभ तथा अशुभरूप रागादिक के विकल्प जहाँ हो वे अध्यवसान कहलाते है ।
अधोलोक	लोक के नीचले हिस्से को अधोलोक कहते है । अधोलोक में नारकी और भवनवासी देवों का निवास है ।
अधकरण लब्धि	अधःकरण में परिणामों की विशुद्धि प्रति समय अनन्त गुणी होती रहती है ।
अधिकरण	वह असमीक्ष्य अधिकरण है । बिनाविचारे काम करना ।
अधो-व्यतिक्रम (अधः व्यतिक्रम)	अज्ञान अथवा प्रमादवश नीचे की सीमा का उल्लंघन करना
अधर्म द्रव्य	जो स्वयं ठहरते हुवे जीव पुद्गल को ठहरने में सहायक हो उसे अधर्म द्रव्य कहते है ।
अधम	पापी ।
अध्रुव	चंचल बिजली आदि अध्रुव पदार्थो का अवग्रह आदि होना (अनित्य)
अध्यारोप	मिथ्या या निराधार कल्पना ।
अध्वर	याग, यज्ञ, क्रतु, पूजा सपर्या, इज्या, अध्वर, मख ये सब पूजा विधि पर्यायवाची शब्द है ।
अध्वान	बन्ध -सीमा ।
अधिगम्य	जानकर अर्थात अपनी शक्ति अनुसार
अधकर्म	जिन कार्यों के करने से जीव हिंसा होती है उन्हे अधकर्म कहते है।
अध्यात्म शास्त्र	जिस में अभेद रत्नत्रय के प्रतिपादक अर्थ और पदार्थो का व्याख्यान किया जाता है उसको अध्यात्म शास्त्र कहते है ।
अध्यातम	आत्म अनुभव
अधिगम सम्यक्त्व	जो पर के उपदेश से सम्यकत्व प्राप्त होने के समय तत्वबोध होता है वह अधिगम सम्यकत्व है ।
अध्यधि दोष	समागत साधु को देखकर उन्हे आहार देने के उद्देश्य से अपने लिये पकाये हुवे अन्न में जल, चावल आदि और मिला देना अथवा भोजन तैयार होने तक पूजा या धर्म चर्चा के बहाने उन्हे रोके रखना ।
अध्वानगत	मार्ग विषयक त्याग जैसे इस जंगलमें निकलने तक आहार का त्याग करना अध्वानगत प्रत्याख्यान है ।
अन्तर-सीमा	सीमा में भी थोड़ी सीमा ।

अन्तकरण	मन से ।
अन्तकृतदश	प्रत्येक तीर्थंकर के काल में दस दस मुनि होते है इसमें उन मुनियों की कथाओं का वर्णन है ।
अनि:सृत	वस्तु के एक देश से वस्तु का पूर्ण अवग्रह आदि होना
अनुक्त	अभिप्राय गत पदार्थ अथवा जिसके बारे में कुछ कहा नहीं गया है उसका अवग्रह आदि होना ।
अनुत्तरोपपादिकदश	प्रत्येक तीर्थंकर के काल में दस दस मुनि होते है जो उपसर्ग सहन कर पांच अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होते है ।
अनंग क्रीड़ा	विकृत और उच्छरंखल यौनाचार में रुचि रखना, अप्राकृतिक मैथुन करना, अनंग क्रीडा है ।
अनुस्मृति	भोगे हुवे विषयों का बार बार स्मरण करना ।
अनुदय	उपशांति ।
अनादर	सामायिक के प्रति अनुत्साह
अन्तराय	जिसके कारण भोजन त्याज्य होता है उसे अंतराय कहते है ।
अनगार	साधारण मुनिराज अनगार कहलाते है ।
अनुवीचि भाषण	निर्दोष वचन बोलना ।
अनुमानित दोष	अपने वचनों द्वारा अपनी अशक्तता को प्रकट कर इस अनुमान से अपनी आलोचन करना कि अब मुझे अल्प प्रायश्चित मिलेगा वह अनुमानित दोष है ।
अनिष्ट संयोग	अप्रिय वस्तु या व्यक्ति के संयोग होने पर उसे दूर करने के लिये होने वाले संयोगजन्य विकलता ।
अन्तर्धान विक्रियाऋद्धि	अद्रश्य हो जाने की क्षमता
अन्वयी	गुण को नित्य अथवा अन्वयी कहते है ।
अनर्थ दंडव्रत	अप्रयोजनभूत पाप और विकल्प नहीं करना ।
अनर्थ दंड	बिना प्रयोजन पाप कार्य करने को अनर्थ दण्ड कहते है ।
अनगार धर्म	मुनि के धारण करने योग्य धर्म को अनगार धर्म कहते है।
अनादि निधन	वस्तु अनादि से है और अनन्त काल तक रहेगा, वह क्षणिक नहीं है ।
अनगारी	महाव्रत धारण करनेवाले छट्ठे गुण स्थान वाले मुनिराज
अन्तरंग तप	इच्छाओं को रोकना
अनित्य भावना	अनित्य (नाशवान) वस्तु का चिंतवन करना ।
अनुप्रेक्षा	संसार, शरीर, भोग आदि के स्वरुप का बारबार चिंतवन करना
अन्यत्व भावना	पर पदार्थ से आत्मा अलग है ऐसा चिंतवन करना ।

अनध्यवसाय	"कुछ है" इस प्रकार निश्चय ज्ञान । यह क्या है ऐसा विचार।
अनेकान्त	अनेक (बहुत), अन्त-धर्म, एकही वस्तु में परस्पर विरोधी अनेक धर्म युगलों का स्वीकार ।
अनाचार	व्रत का सर्व देश भंग होना अनाचार है ।
अनुभावेन	कषाय भाव अनुसार ही फल होता है ।
अनृत	असत्य (झूठ)
अनसूयत्व	ईर्षाभाव अथवा दुर्भाव न रखना – ईर्षारहित
अनशन तप	उपवास
अनित्य	नाशवान, (आत्मा नित्य है, ध्रुव है)
अनुप्रदान	पीच्छिका आदि उपकरण देना
अननुगामी अवधिज्ञान	जो अवधिज्ञान ज्ञाता का क्षेत्रान्तर और भवान्तर में अनुगमन नहीं करता है वह अननुगामी अवधिज्ञान है ।
अनवस्थित अवधिज्ञान	सम्यग्दर्शन आदि गुणों की वृध्दि हानि के निमित्त से जलकी तरंगवत घटते बढते रहनेवाला अवधिज्ञान
अनुगामी अवधिज्ञान	सूर्य के प्रकाश की तरह ज्ञाता का अनुसरण करनेवाला अवधिज्ञान अनुगामी अवधिज्ञान है ।
अनुभय मनोयोग	मन की जो प्रवृत्ति सत्य भी नहीं है और असत्य भी नहीं है उस प्रवृत्ति का नाम अनुभय मनोयोग है ।
अनाहरक जीव	नो कर्म वर्गणाओं के ग्रहण / आहार से रहित जीव अनाहरक है। सयोग केवली, अयोग केवली और सिद्धजीव अनाहरक होते है ।
अनुभागबंध	कर्मो की फलदान शक्ति को अनुभाग बंध कहते है ।
अन्तराय कर्म	आत्मा की शक्ति को रोकता है । अथवा जो दाता और पात्र के मध्य में विघ्न आता है वह अन्तराय है ।
अन पवर्तनीय आयु	बड़े बड़े कारण आने पर भी निर्धारित आयु की काल मर्यादा एक क्षण को भी कम न हो, उसे अन पवर्तनीय आयु कहते है ।
अनुभाग	कर्मो की फलदान शक्ति को अनुभाग कहते है । या कर्मो की शक्ति के उदय होने को ।
अनन्त वियोजक	अन्तन्तानु बंधी की विसंयोजना में प्रवृत्त सम्यग्दृष्टि ।
अनुमान	संकेतों (चिन्हों) से पदार्थ के निश्चय करने को अनुमान कहते है ।
अनादिअनन्त	वस्तु क्षणिक नहीं है वह अनादि से है और अनन्त काल तक रहेगी ।
अनादि बंध	जो गुण स्थानों की श्रेणी पर नहीं चढ़ा अर्थात जिसके बंध का

	अभाव नहीं हुआ वह अनादि बंध है ।
अन्यथात्व	एक जीव मनुष्य से देव हुआ इसलिये जो पहिले था वह अब नहीं है इसको अन्यथात्व कहते है ।
अनादेय नामकर्म	अनादेय नाम कर्म के उदय से अच्छा कार्य करने पर भी गौरव प्राप्त नहीं होता । यह निष्प्रभ शरीर का भी कारण है ।
अनीशार्थ दोष	दानपति के द्वारा निषिद्ध आहार ग्रहण करना ।
अनुजीवी गुण	भाव स्वरुप गुणों को अनुजीवी गुण कहते है ।
अन्तर्द्वीपजम्लेच्छ	कुभोग भूमि के मनुष्य
अन्तर्द्वीप	सागरों में स्थित छोटे छोटे भूखण्ड ।
अन्योन्याभाव	पुद्गल द्रव्य की एक वर्तमान पर्याय में दूसरे पुद्गल की वर्तमान पर्याय के अभाव को अन्योन्या भाव कहते है ।
अनिष्ट कारक अभक्ष्य	जो पदार्थ भक्ष्य होने पर भी अपने लिये हितकर नहीं उसे अनिष्ट कारक अभक्ष्य कहते है । (सर्दी जुकाम में ठण्डी चीजे)
अनुपसेव्य अभक्ष्य	जो पदार्थ सेवन करने योग्य न हो उन्हे अनुपसेव्य अभक्ष्य कहते है, जैसे लार, मूत्र आदि
अनर्पित	प्रयोजन के अभाव में जिसकी प्रधानता नहीं रहती वह अनर्पित है ।
अनुभागबन्धाध्यवसाय स्थान	अनुभाग बन्ध के कारण कषाय के तरतम स्थानों को अनुभाग बन्धा ध्यवसाय स्थान कहते है ।
अनुमति	धर्माचरण करनेवाले को कहना कि यह अच्छा है उसका अनुमोदन करना ।
अनिह्नव	सिखानेवाले गुरुआदि को छिपाना नहीं ।
अनादृत दोष	वन्दना में आदर भाव नहीं रखना । (अनादृत)
अनालब्ध दोष	उपकरण आदि की आशा से वंदना करना ।
अनागत	चतुर्दशी के दिन किया जानेवाला उपवास त्रयोदशी को कर लेना, अनागत प्रत्याख्यान है ।
अनाकार	स्वेच्छा से नक्षत्रादि कारणों के बिना उपवासादि करना अनाकर प्रत्याख्यान है ।
अनाकार उपयोग	जिसमें कोई भी पदार्थ प्रतिभासित न होकर केवल महासामान्य रुप ही विषय प्रति भासित हो उसको अनाकार उपयोग (दर्शन) कहते है ।
अनिह्नव शुद्धि	जिस गुरु से शास्त्र पढा है उसका नाम प्रकाशित करना अथवा जिस ग्रंथ से ज्ञान हुवा है उसको नहीं छिपाना ।

अनाचिन्न	अयोग्य वस्तु
अनन्तानुबंधी कषाय	जिस कषाय के उदय से सम्यक्त्वाचरण चारित्र का घात होता है अथवा जो अनन्त संसार का कारण होती है उसे अनन्तानुबंधी कषाय कहते है ।
अनुभाग शक्ति	फलदान शक्ति ।
अनुभाग घात	अशुभ कर्मो की फलदान शक्ति को अनन्तगुणी हीन हीन करते जाना अनुभाग घात कहलाता है ।
अन्तरात्मा	जो शरीर से भिन्न आत्मा को जानते है वे अन्तरात्मा है ।
अनवस्थित	अध्रुव, अनित्य, समय समय में भिन्न भिन्न रूप, पर्याय, विशेष ।
अनुपचरित सदभूत व्यवहार नय	जिस पदार्थ के भीतर जो शक्ति है वह उसकी यदि विशेष निरपेक्ष सामान्यरूप से निरुपण की जाती है तो वह अनुपचरित सद व्यवहार नय है ।
अन्तर भाव	समावेश ।
अनिवृत्तिकरण लब्धि	जिस करण में प्रतिसमय एक समान परिणाम हो उसे अनिवृत्तिकरण लब्धि कहते है ।
अनिवृत्तिकरण गुणस्थान	जहाँ पर जीवों के परिणामों की निवृत्ती नहीं होती उसे अनिवृत्तिकरण कहते है । और उनके स्थान को अनिवृत्तिकरण गुण स्थान कहते है ।
अन्तरकरण	परिणामों में विशुद्धि के कारण सत्ता स्थित कुछ कर्म प्रदेशो में से कुछ निषेकों का अपना स्थान छोड़कर उत्कर्षण -अपकर्षण द्वारा ऊपर नीचे के निषेकों में मिल जाना अन्तर करण है
अनुकम्पा	प्राणि मात्र के प्रतिदया भाव अर्थात किसी को दुःखी देखकर द्रवित हो जाना ।
अनायतन	सम्यकत्व के नाशक कुदेवादिक की प्रसंसा करने को अनायतन कहते है । अर्थात अधर्म या मिथ्यात्व के स्थान को अनायतन कहते है ।
अनुयोग	जीवादिक पदार्थों के जानने के उपाय विशेष को अनुयोग कहते है ।
अनुपगूहन	धर्मात्माओं के दोषों को उजागर कर धर्म मार्ग की निंदा करना ।
अन्यदृष्टि प्रशंसा	कुमार्गगामी व्यक्ति की परोक्ष में मन से प्रशंसा करना ।
अन्यदृष्टि संस्तव	कुमार्गगामी व्यक्तियों की मुख से प्रशंसा करना ।
अनिह्नवाचार	जिस शास्त्र या गुरू से ज्ञान प्राप्त किया है उसका नाम नहीं छिपाना ।
अनादि पर्व	जैन धर्म में अष्टमी और चतुर्दशी को अनादि पर्व माना गया है ।

अन्य विवाहकरण	दूसरों के विवाह कराने का व्यवसाय करना ।
अनवस्थितपना	अवस्था भेद ।
अनिर्वचनीय	अभेद (अखण्ड) अथवा निर्विकल्पक।
अनियत	ज्ञान की हानि-वृध्दि सहित ।
अन्वय	वस्तु - उपादन - द्रव्य ।
अनन्यक	नर नारकादि पर्यायों रहित ।
अनार्यता	अपवित्रता ।
अनुद्रेक	अनुदय -तीव्रता का अभाव - उद्रेक ।
अनात्म वित्	जो आत्मा को नहीं जानते ।
अन्वय व्यतिरेक	जिसके होने पर जो हो उसको अन्वय कहते है और जिसके नहीं होने पर जो न हो - उसको व्यतिरेक कहते है।
अन्वित	संयुक्त तन्मय अर्थात युक्त।
अनन्त धर्माधिरूढ़	अनन्त गुण युक्त ।
अनात्मीय	पर।
अन्तर्भूत	समाविष्ट।
अनल्प	बहुत ।
अनक्षरात्मक भाषा	द्विन्द्रियादिक असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यंत जीवों की भाषा अनक्षरात्मक होती है ।
अनन्यमयी	एकमेक - अभिन्न ।
अनन्य शरण	स्वपक्ष नियत ।
अनन्तज्ञान	अनन्त अर्थात कभी भी अन्त न होने वाला सीमातीतज्ञान अनन्त ज्ञान है ।
अनन्त दर्शन	जिस दर्शन का कभी भी अंत न हो वह अनन्त दर्शन है ।
अनन्त सुख	अन्त और विच्छेद से रहित इन्द्रियातीत सुख-अनन्त सुख है ।
अनन्त वीर्य	जिस वीर्य का कभी भी अन्त न हो वह अनन्त वीर्य है ।
अनिन्द्रिय	मन ।
अनिर्वचनीय अखण्ड	विकल्पातीत ।
अनिर्मल	मलीन
अनुमति त्याग प्रतिमा	किसी भी लौकिक कारोबार में किसी भी प्रकार की अनुमति -परामर्श नहीं देना, अनुमति त्याग प्रतिमा है ।
अनागतमपि	मरण काल आने के पहिले ही ।
अनुपचरित असद्भूत	यह वह नय है कि पर वस्तु का किसी से संयोग होते हुवे ही

व्यवहारनय	परको उसका कहना ।
अपकर्षण	घटना अर्थात पूर्व बद्ध कर्मोंके स्थिती और अनुभाग के घटने को अपकर्षण कहते है ।
अपकर्षकाल	अपने जीवन की दोतिहाई आयु व्यतीत जाने पर ही आयु कर्म बंधता है । वह भी अन्तर्मुहूर्त तक, इसे अपकर्षकाल कहते है ।
अपगत वेदी	तीनों वेदों के उदय से रहित अवस्था, यह अवस्था नवमें गुणस्थान में वेद कर्म के क्षय या उपशम से उत्पन्न होती है ।
अपगत वेद	तृण की अग्नि, कारीष (कंडे) की अग्नि, इष्टपाक (अवा-भट्टा) की अग्नि के समान वेद के परिणामों से रहित जीवों को अपगतवेद कहते है ।
अप्रणतिवाक्	जिसे सुनकर तपोनिधि या गुणी जनों के प्रति अविनिय की प्रेरणा मिले वह अप्रणतिवाक् है ।
अप्रतिष्ठित प्रत्येक	जिस प्रत्येक वनस्पति के शरीर में बादर निगोदिया जीवोंका वास न हो उसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते है ।
अप्रत्याख्यान कषाय	अप्रत्याख्यान कषाय कुछ शिथिल होती है । यह कषाय देशसंयम (देश चारित्र) का घात करती है ।
अप्रतिबुद्ध	अज्ञानी ।
अप्रतिपत्ति	अप्राप्ति - अश्रध्दा-अनसमझन ।
अप्रतिघात विक्रिया ऋद्धि	शैल शिला और वृक्षादिक के मध्य होकर आकाश के समान गमन करने की सामर्थ्य ।
अप्रतिपाती अवधिज्ञान	केवल ज्ञानोत्पत्ति के पूर्व तक न छूटनेवाला अवधिज्ञान
अप्रतिष्ठित जीव	साधारण जीवों से रहित प्रत्येक जीव अप्रतिष्ठित कहलाते है ।
अप्रशस्त विहायोगति	अशुभगमन आकाश में ।
अप्रशस्त उपशम	विवक्षित प्रकृति यदि उदय योग्य न हो और स्थिति अनुभाग उत्कर्षण अपकर्षण तथा संक्रमण के योग्य हो तो उसे अप्रशस्त उपशम कहते है ।
अप्रतिपक्षी	जिन प्रकृतियों के बंध होने को कोई भी दूसरी प्रकृति का बंध रोक न सके उनको अप्रतिपक्षी कहते है ।
अपध्यान	बिना प्रयोजन किसी की हार-जीत, लाभ-हानि और जीवन मरण का चिंतन अपध्यान है ।
अप्रभावना	अपने खोटे आचरण तथा प्रवृत्तियोंसे धर्म मार्ग को कलंकित करना, धर्म मार्ग प्रचार -प्रसार में सहभागी नहीं बनना ।

अप्रमत्त विरत गुणस्थान	जिन जीवों को १५ प्रकार का प्रमाद नहीं पाया जाता है उन्हे अप्रमत्त विरत कहते है और उनके स्थान को अप्रमत्तविरत गुणस्थान कहते है ।
अपरिग्रहीता इत्वरिका गमन	बिना विवाही वेश्यादि के पास आना जाना ।
अप्रदेशी	एक प्रदेशी - अकायत्व ।
अपूर्व अपूर्व	नई - नई ।
अप्रमाण दोष	प्रमाण से अधिक आहार लेना अप्रमाण दोष है ।
अप्रमत्त	सावधान ।
अपाय	नाश ।
अपर्याप्तिनाम कर्म	जिस कर्म के उदय से जीव स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण न कर सके उसे "अपर्याप्ति नाम कर्म " कहते है ।
अपाय विचय	राग द्वेष मोह आदि विकारों को नाश करने का चिंतन करना अपाय विचय कहलाता है ।
अपर	विशेष ।
अपरिणत दोष	जो जल गर्म होकर ठंडा हो गया हो अथवा जिसका रूप, रस, गंध और स्पर्श परिवर्तित नहीं हुये हो, लवंगादि से युक्त वैसे जल को ग्रहण करना ।
अपरिश्रवण	शिष्य के गोप्य दोष को सुनकर जो प्रगट नहीं करते है उनके अपरिस्त्रवण गुण होता है ।
अपरिशेष	यावज्जीवन चार प्रकार के आहार का त्याग करना अपरिशेष प्रत्याख्यान है ।
अपराहिक स्वाध्याय का काल	मध्याह्न के दो घडी बाद से लेकर सूर्यास्त के दो घड़ी पहले तक अपराहिक स्वाध्याय काल है ।
अपूर्वकरण लब्धि	इस करण में प्रति समय पूर्व में अननुभूत अपूर्व अपूर्व परिणाम उत्पन्न होते रहते है ।
अपवर्गनगर	मोक्षपुर ।
अपवर्ग	मोक्ष ।
अपवर्तनीय आयु	कारण प्राप्त होने पर जिस आयु की काल मर्यादा में कमी हो सके उसे अपवर्तनीय आयु कहते है ।
अपूर्वकरण गुण स्थान	जहाँ पर जीवो के उत्तरोत्तर अपूर्व ही अपूर्व परिणाम होते है उसे अपूर्वकरण कहते है और उनके स्थान को अपूर्व करण गुणस्थान

	कहते है ।
अपृथक विक्रिया	अपने शरीर को ही सिंह, व्याघ्र, हिरण, हंस आदि रूप बना लेना ।
अपात्र	सम्यकत्व और शीलव्रतों से रहित व्यक्ति अपात्र कहलाते है ।
अप्रत्यवेक्षीत अप्रमाजित उत्सर्ग	बिना देखे, बिना झाड़े मल मूत्रादि करना ।
अबद्ध	द्रव्य कर्म के बंध रहित ।
अबद्धज्ञान	जो मोह कर्म से रहित है, क्षायिक है, शुद्ध है, लोका लोक का प्रकाशक है वह अबद्धज्ञान है ।
अब्रह्म	कुशील (मैथुन) - अब्रह्मचर्य ।
अभयदान	प्राणी मात्र का भय दूर करके उनके जीवन की रक्षा करना अभयदान है ।
अभक्ष्य	जो भक्षण करने के योग्य न हो तथा खाने योग्य न हो वहां अभक्ष है ।
अभाव	एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में नहीं होना उसे अभाव कहते है ।
अभव्यजीव	मोक्ष गमन की योग्यता से रहित जीव अभव्य कहलाते है।
अभिषव	कामोद्दीपक पौष्टिक रस खाना ।
अभीष्ट	मनोवांछित ।
अभूतपूर्व	नई ।
अभव्यत्व भाव	रत्नत्रय प्रकट करने की योग्यता से रहित जीव अभव्य कहलाते है ।
अभिव्यंजक	प्रकाशक अथवा निमित्त ।
अभिव्यंजक भाव	प्रकट अर्थ ।
अभिव्यक्ति	प्रगटता ।
अभिनिवेश	अभिप्राय -या आग्रह या मृत्यु का भय ।
अभेदरूप	एक जैसे ।
अभूतार्थ	असत्य (झूठ) । जो पदार्थ में न पाया जावे, ऐसा अर्थ भाव उसे अनेक कल्पना कर प्रकाशित करें , उसे अभूतार्थ कहते है ।
अभिघट दोष	पंक्ति रूप से स्थित तीन या सात घरों को छोड़कर शेष सभी स्थानों से आया हुवा रोटी, भात आदि आहार साधु के अयोग्य है। उसे ग्रहण करना अभिघट दोष है ।
अभोज्य गृह प्रवेश अंतराय	शास्त्र मर्यादा से रहित चाण्डालादि के गृह में आहार के लिये प्रवेश कर जाने पर ।
अभ्याख्यान	हिंसादि से विरक्त मुनि या श्रावक को हिंसादि का दोष लगाना

	अभयाख्यान है ।
अभिज्ञान	दृष्टांत - उदाहरण ।
अभिमत	इष्ट प्रीति करनेवाले ।
अभिनिबोधिक ज्ञान	इन्द्रिय और अनिन्द्रिय (मन) की सहायता से अभिनिमुख ओर नियमित पदार्थ का जो होता है उसको अभिनिबोधिकज्ञान कहते है।
अमनोज्ञ	मन को अरुचिकर लगनेवाले पदार्थ अमनोज्ञ है ।
अम्बर	समस्त विषय कषाय रूप विकल्पजालों से शुन्य परम समाधि लेना ।
अमनस्क	असंज्ञीजीव ।
अमूर्तिक	रूप, रस, गंध और स्पर्शरहित वस्तु ।
अमूढ़ दृष्टिअंग	तत्व को जानकर तत्व का श्रध्दान करना ।
अमूढ़ दृष्टि	देव में गुरु में तथा धर्म में तत्वार्थ को यथार्थ रूप से देखनेवाली जो दृष्टि है वह अमूढ़ दृष्टि है ।
अमेध्य अंतराय	आहार ते लिये जाते हुवे मुनि का पैर विष्टा आदिक अपवित्र वस्तुओं से लिप्त हो जाने पर ।
अमृत-स्त्रावी रस ऋद्धि	जिस ऋद्धि के प्रभाव से मुनियों के हाथ में रखे गये आहारादिक अमृतमय हो जाते है वह अमृत स्त्रावी ऋद्धि है ।
अय	आत्मा के स्वरूप में गमन ।
अयोग केवली गुणस्थान	जिन केवलियों के योग नहीं होता है उन्हे अयोग केवली कहते है और उनके स्थान को अयोग केवली गुणस्थान कहते हैं ।
अयश कीर्ति गुणस्थान	इस कर्म के उदय से अप यश मिलता है इसलिये इसे वह अयश कीर्ति गुणस्थान है ।
अयशकीर्तिनाम कर्म	इस कर्म के उदय से अपयश मिलता है ।
अरति	द्वेष या संयम के प्रति अनुत्साह या दुःख ।
अरिहंत तीर्थंकर	की प्रतिमा के छाती (वक्ष) पर ४ पांखुडी का एक फुल जिसको "श्रीवत्स" कहते है । यह चिन्ह दूसरे अरिहंतो को नहीं होता है ।
अरिहंत की प्रतिमा	चिन्ह व प्रातिहार्य युक्त प्रतिमा अरिहंत की होती है ।
अरहंत देव के विभिन्न नाम	अरंहत देव, अरंहत परमवीतराग देव, केवलज्ञानी, तीर्थंकर देव ।
अरिष्ट	दुःख देने वाले ।
अरिहंत	चार घातियों के कर्मो के नाशक और अनन्त चतुष्टय सहित।
अरिहंताणं	पहिले परमेष्ठी अरिहंत ।
अरहंताणं	अर्हंतो अर्थात जो पुज्य हो गये है ।

अरिहंत परमेष्टी	जिन्होंने चार घातियां कर्मो का नाश किया हो, जो केवलज्ञान, शरीर और समवशरण सहित हो, उन्हें अरिहंत परमेष्ठी कहते है। और वो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी होते है ।
अलोकाकाश	लोकाकाश के बाहर के आकाश को अलोकाकाश कहते है ।
अलख	इन्द्रिय गोचर नहीं है या अमूर्तिक (अतीन्द्रिय) ।
अलौकिक सुख	इसमें इंन्द्रियातीत होने से केवल वीरागी जनो को ही होता है ।
अलप	थोड़ा ।
अलंघ्य	टाली नही जा सकती ।
अलुब्धता	आहार दान से ऐहिक फलों की अपेक्षा नहीं रखना ।
अल्प बहुत्व	भेदों की परस्पर में न्यूना धिकता का विचार करना अल्प बहुत्व है ।
अलेश्य सिद्ध	जो अनन्त सुख को प्राप्त कर संसार से सर्वथा रहित होकर सिद्धि पुर को प्राप्त हो गये है तथा जो अतीन्द्रिय अनन्त सुख से तृप्त है वे जीव सर्वथा लेश्याओं से रहित है, उनको अलेश्य सिद्ध कहते है ।
अल्प	एक जाति की एक दो व्यक्ति को अल्प कहते है ।
अल्पविध	दो जाति के अनेक व्यक्तियों को अल्पविध कहते है ।
अवद्य संयुक्त	सावद्य (पापसहित) ।
अवग्रह मतिज्ञान	दर्शन के बाद सामान्य रूप से पदार्थ के ग्रहण का नाम अवग्रह है ।
अवगाहनत्व	जिस गुण के रहने पर एक में अनन्त समा जाते है ऐसे गुण को अवगाहनत्व गुण कहते है ।
अवगाहना	शरीर की ऊँचाई य आकृति अथवा सिद्धोंका आकार ।
अवगाह सामान्यगुण	छह द्रव्य एक स्थान में रहते है और एक दूसरे को उसीस्थान में रहने को जगह दे देते है । यह अवगाह सामान्य गुण है।
अवगाढ़ सम्यक्त्व	श्रुत केवली का सम्यक्त्व ।
अवधिदर्शन	अवधिज्ञान के पूर्व होने वाला सामान्य प्रतिभास अवधि दर्शन है ।
अवधिज्ञान	इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना द्रव्य, क्षेत्र, काल,भाव की अपेक्षा पूर्वक एक निश्चित सीमागत रूपी पदार्थों को स्पष्ट जाननेवाला ज्ञान अवधि ज्ञान है ।
अवधि ज्ञानावरण	अवधिज्ञान को आवृत्त तथा हीनाधिक करते है ।
अवधिदर्शनावरणकर्म	चक्षु के अलावा शेष इन्द्रियों से होनेवाले सामान्य दर्शन बोध को अवधि दर्शन रोकता है ।
अविपाकनिर्जरा	तपादि साधनों द्वारा समय से पूर्व ही कर्मो के क्षय से होनेवाली निर्जरा अविपाक निर्जरा है ।

अवदात	स्वच्छ ।
अविशंक	निडर होकर ।
अवगाहन	स्थिती ।
अवस्थापना	बुरी हालत ।
अवास्थिपना	जो शक्ति जिस स्वरुप को लिये हुये है , वह सदा उसी स्वरुप में रहती है उसे अवास्थितपना कहते है ।
अवमोदर्य तप	एकाशन करना अथवा भूख से कम खाना ।
अवान्तर	विशेष ।
अविनाभाव	जो जिसके होने पर हो और नहीं होने पर नहीं हो वह अविना भाव है । सहभाव नियम तथा क्रमभाव नियम को अविनाभाव कहते है ।
अव्यक्त	अबुद्धिपूर्वक ।
अवात्सल्य	साधर्मीजनों से प्रेम नहीं करना, उनसे मात्सर्य और विद्वेष रखना ।
अविर्भाव	प्रगटना ।
अव्याबाध	एक द्रव्य अनादि अनन्त अपने चतुष्टय में अपना कार्य करता है – दूसरे को कोई बाधा नहीं देता ।
अवायमतिज्ञान	इहा के बाद (विचारणा) एक निर्णय पर पहुँचना "अवाय" है । विशेष के निर्णय द्वारा जो यथार्थज्ञान होता है वह अवाय है ।
अव्यय	नाश रहित ।
अव्ययपद	मोक्ष पद ।
अवक्तव्य	वाणी का अविषय ।
अव्यक्त दोष	दोषों को नहीं समझनेवाले अनिष्णात गुरु के समक्ष अपनी आलोचना करना "अव्यक्तदोष" है।
अविकल	अक्षरशः।
अव्यक्त प्रमाद	जिस प्रमाद का स्वयं को स्पष्ट अनुभव न हो वह अव्यक्त प्रमाद है ।
अव्युत्पन्न	विशेष ज्ञान रहित ।
अवस्थित	एक सा, ध्रुव, टंकोत्कीर्ण, नित्य, द्रव्य, गुण, सामान्य ।
अवस्थित बंध	पहिले पीछे दोनों समयों में समान (एक सा) बंध होने पर अवस्थित बंध होता है ।
अविरति	मनमानी करने को अविरति कहते है ।
अवलम्ब ब्रह्मचारी	क्षुल्लक के रूप में समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करनेवाले अवलम्ब ब्रह्मचारी कहलाते है ।

अविशिष्ट	गुण भेद रहित ।
अवस्थान्तर	शुद्ध दशा ।
अवसर्पिणीकाल	ह्रासोन्मुख काल ।
अविषादित्व	विषाद (खिन्न परिणाम) न करें ।
अवस्थित अवधिज्ञान	केवलज्ञान होने तक सदा एक सा बना रहने वाला अवधिज्ञान।
अवस्थित उग्र तप ऋद्धि	दीक्षोपवास के बाद एकांतर से उपवास फिर कोई निमित्त पड़ने पर दो उपवास फिर ३ उपवास, इस प्रकार उपवास के क्रम को बढाते जाना अवस्थित उग्र तप ऋद्धि है ।
अविरत सम्यकत्व गुणस्थान	जो इन्द्रियों के विषयों से त्रसऔर स्थावर जीवों की हिंसा से विरक्त नहीं है , किंतु जिनेन्द्र देव द्वारा कथित प्रवचन का श्रद्धान करता है । उसे अविरत सम्यकदृष्टि कहते है और उसके स्थान को अविरत गुणस्थान कहते है ।
अवग्रह	जिसके द्वारा घटादि पदार्थ जाने जाते है वह अवग्रह है ।
अवगाह	गहराई ।
अवशिष्ट	बाकी-शेष ।
अवश	जो अन्य के वश नहीं है वह अवश है ।
अवाय	ईहा ज्ञान के अनन्तर वस्तु के विशेष चिन्हों को देखकर जो उसका विशेष निर्णय होता हैउसको अवाय कहते है ।
अवसाय	पदार्थ के ज्ञान या निश्चय का नाम अवसाय है ।
अविनय	जिनमे जीवादि पदार्थो को सुनने और ग्रहण करने का गुण नहीं है । वे अविनय कहलाते है ।
अविभक्ति	विभक्ति के अभाव को अविभक्ति कहते है ।
अवगम्य	जानना ।
अवान्तर सत्ता के पर्यायवाची शब्द	विशेष, प्रतिषेध, सांश, पर, अशुद्ध, प्रतिषेध्य, सापेक्ष ।
अविवक्षित	गौण ।
अवान्तर सत्ता	तथा द्रव्य है, गुण है , पर्याय है, उत्पाद है, व्यय है, ध्रौव्य है इस प्रकार जितना भी विस्तार है, सत का परिवार है, वह अवान्तर सत्ता कहलाता है ।
अविभाग प्रतिच्छेद	एक परमाणु में जो जघन्य वृद्धि होती है उसे अविभाग प्रतिच्छेद कहते है ।
अव्याप्त लक्षणाभास	लक्ष के एक देश में लक्षण के रहने को अव्याप्त

	लक्षणाभास कहते है ।
अश्व	घोडा ।
अशन	भोजन ।
अशन-दोष	भोज्य सामग्री सम्बन्धी दोषों को अशन दोष कहते है ।
अशरण भावना	धर्म के सिवाय कोई भी शरण रूप नहीं है ऐसा चिंतवन करना ।
अशुचिभावना	शरीरादि का अशुचि रूप चिंतन करना ।
अशुभनामकर्म	अशुभ नाम कर्म असुन्दर शरीर प्राप्त कराता है ।
अशुभ तैजस	क्रोध को प्राप्त मुनियों के बाएँ कंधे से निकलने वाला शरीर अशुभ तैजस कहलाता है ।
अशुभाश्रव	तीव्र कषाय सहित योग से जो आश्रव होता है उसे अशुभाश्रव कहते है ।
अशुद्धत्व	अपने गुण से च्युत होना अशुद्धत्व है अर्थात विभाव के कारण अद्वैत से द्वैत हो जाना अशुद्धत्व है ।
अशुभ उपयोग	संसार, विकथा, पापरुप भाव होना अशुभ उपयोग है । अर्थात विषयानुराग युक्त परिणाम अशुभपयोग है ।
अशेष	सम्पूर्ण ।
अक्ष संचार	भेदों के बोलने के विधान ।
अक्षर	द्रव्य रूप से जिसका विनाश नहीं होता वह अक्षर है ।
अक्ष	पहिचानता है या बोध कराता है ।
अक्षर समास	द्रव्य श्रुतज्ञान का ऐक भेद ।
अक्षीण महानस	जिस ऋद्धि के प्रभाव से मुनिद्धारा गृहीत आहार उस दिन अक्षीण बना रहे, वह अक्षीण महानस नामक ऋद्धि है ।
अक्षीण महालय	जिस ऋद्धि के प्रभाव से समचतुष्कोण चार धनुषभूमि में भी असंख्य जीव समाजाय, वह अक्षीण महालय नामक ऋद्धि है ।
अक्षिप्र	मंदगति से गतिशील वस्तु का अवग्रह आदि होना ।
अक्षिप्र	मन्द गति से चलने वाले पदार्थ को अक्षिप्र कहते है ।
अश्रुपात अंतराय	दुःख पूर्ण विलाप युक्त अश्रुपात का दर्शन होने पर । सुख के आँसू में अन्तराय नहीं होता ।
अष्टांग महानिमित्त	नभ, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, चिन्ह और स्वप्न इन आठ निमित्तो से त्रिकाल का ज्ञान करानेवाली बुद्धि (निमित्तिक) ।
असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन	मेरु से हड्डी मिली हो ।
अस्थितिकरण	किसी कारणवश धर्म से स्खलित होते हुये व्यक्ति को धर्म मार्ग में

	स्थिर करने का प्रयास न करना ।
अस्थिर नामकर्म	शरीर के धातु तथा उपधातुओं को अस्थिर रखनेवाला कर्म अस्थिर नाम कर्म है ।
असि	तलवार ।
असि कर्म	सेना आदि में अपनी सेवायें देकर अस्त्र शस्त्रादि से धनार्जन करना ।
असन	नीचे को गिरना ।
अस्नान व्रत	स्नान उबटन आदि का त्याग करना अस्नान व्रत है ।
असंयुक्त	राग रहित ।
असिद्ध	संसारी ।
असंयत	१४ प्रकार के जीव समास और २८ प्रकार के इंद्रियों के विषय इनसे जो विरक्त नहीं है उनको असंयत कहते है या असंयम ।
असंयम	छह काय जीव की हिंसा रूप और पांच इन्द्रिय और छट्ठा मन के विषयों में राग द्वेष रूप द्रव्य और भाव प्राण की हिंसा असंयम है ।
असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव	मन रहित असंज्ञी ।
असाता वेदनीय कर्म	जिस कर्म के उदय से प्रतिकूल विषयोंका संयोग होने पर दुःख का संवेदन होता है वह असाता वेदनीय कर्म है ।
असंप्राप्तानि	आपस में नहीं मिले हो ।
असमग्र	असंपूर्ण ।
असम्बद्ध प्रलाप	धर्म, अर्थ काम व मोक्ष इन चार पुरुषार्थों के सम्बन्ध से रहित वचन असम्बद्ध प्रलाप है ।
अस्मय	आठ मदों से रहित ।
असमान	विजातीय ।
अस्पृष्ट	नो कर्म के स्पर्श रहित ।
असंक्रमणात्मक	निर्विकल्पक ।
असमीक्ष्य अधिकरण	प्रयोजन का विचार किये बिना ही अधिकता से प्रवृत्ति करना । बिना विचारे काम करना ।
अस्ति	जो सद्रूप हो उसे अस्ति कहते है ।
अस्तिनास्ति	सत् - असत् ।
अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्व	इसमें जीवादि द्रव्यों के अस्तित्व और नास्तित्व का वर्णन है । वह अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व है ।
असती	अविद्यमान ।
असत्	अभूतार्थ ।

असत् हेतुक तत्व	जो सादि सान्त है, पर से सिद्ध है, अनित्य है, किसी कारण से उत्पन्न हुवा है वह असत् सहेतुक तत्व है ।
अस्त विभ्रम	ज्ञानी ।
अस्तराग	राग रहित ।
अस्ति	जो सदरूप हो ।
अस्तित्वगुण	द्रव्य का वह गुण जिसके कारण द्रव्य का कभी विनाश न हो ।
अस्तिकाय	बहु प्रदेशी द्रव्य को अस्तिकाय कहते है - कायत्व ।
असद्भुत व्यवहारनय	आदि में जिसके और व्यवहार है अन्त में जिसके ऐसा यह असद्भूत व्यवहार नय है ।
असैनी	मन रहित जीव ।
अहिंसाणुव्रत	षट काय जीवों की हिंसा का मन, वचन और काय से पूर्णतया त्याग करना अहिंसा महाव्रत है ।
अहेतुक	बिना किसी कारण के ।
अहेतुता	अकारणता ।
अहिंसा	अपने परिणामों मे रागादि भावोंका प्रगठ न होने देना वही अहिंसा है ।
अष्टाह्निक पूजा	अष्टाह्निक पर्व में देवो द्वारा नंदीश्वर द्वीप में की जाने वाली पूजा ।
अष्टम भक्त	तीन उपवास ।
अज्ञान मिथ्यात्व	जन्म जन्मांतरो के संस्कार के कारण विचार और विवेक शुन्यता से उत्पन्न अतत्व श्रध्दान ।
अक्षम्रक्षण वृत्ति	मुनिराज गुण रत्नों से भरी हुई शरीररुपी गाड़ी को ओंगन (चिकनाई) के समान थोड़ा सा आहार देकर आत्मा को मोक्ष नगर तक पहुँचा देते है इसको अक्षम्रक्षण वृत्ति कहते है ।
अज्ञान	सम्यकत्व के बिना ११ अंग पर्यंत पठन किया हुवा ज्ञान भी अज्ञान है।

आ

आकिंचन	परिग्रह के अभाव को तथा शरीरादिक में ममत्व न रखने को आकिंचन कहते है ।
आकम्पित दोष	आचार्य को प्रसन्न करने की भावना से ।
आक्रोश	क्रोध ।
आकार मात्रक	अर्थ विकल्पात्मक ।
आकाश के नाम	खं, विहाय, अम्बर, गगन, अन्तरिक्ष, जगधाम, व्योम, वियत,

	नभ, मेघपथ ये सब आकाश के नाम है ।
आकाश गता चूलिका	इसमें आकाश के गमन के कारण भूत मंत्र-तंत्रो का वर्णन है ।
आकाश गामित्व क्रिया ऋद्धि	कायोत्सर्ग अथवा पदमासन से बिना पाद विन्यास के आकाश में गमन कराने में समर्थ ऋद्धि ।
आकुलता	चिंता या शल्य ।
आकाश द्रव्य	सभी द्रव्यों को रहने के लिये जो अवकाश दे उसे आकाश द्रव्य कहते है । रुपादि रहित, अमूर्त, निष्क्रिय तथा सर्व व्यापक द्रव्य है ।
आगम का स्वरूप	आगम अर्थात जिनवाणी । आगम द्वादशांग वाणी का ही पर्याय है । प्रवचन भक्ति में प्रवचन का अर्थ जिनेन्द्र, सर्वज्ञ, वीतराग द्वारा प्रणीत आगम है । जिसमें षट द्रव्य, सप्त तत्व, नव पदार्थो, पाच आस्तिकाओं का स्वरुप प्रकाशन करनेवाला है, तथा कर्मो की प्रकृतियों के नाश का वर्णन है वह आगम है । गुणस्थान, जीवसमास और मार्गणाओं का वर्णन प्रवचन भावना से जाना जाता है । १२ भावना , १२ तप, १२ अंग, १४ पूर्व, १४ प्रकीर्णक का स्वरूप आगम से जाना जाता है ।
आगम	आचार्य परम्परा से आगत मूल सिद्धांत को आगम कहते है ।
आगम प्रमाण	आप्त के वचन से उत्पन्न हुया पदार्थ के ज्ञान को आगम प्रमाण कहते है ।
आगम शास्त्र	वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत छह द्रव्यों आदि का सम्यग् श्रद्धान, सम्यग्ज्ञान तथा व्रतादि के अनुष्ठान रूप रत्नत्रय के स्वरुप का जिसमें प्रतिपादन किया जाता है उसको आगमशास्त्र कहते है ।
आग्नेयी धारणा	बाहार का अग्नि मंडल धूमरहित शरीर को जला रहा है व भीतर की अग्नि शिखा ८ कर्मों को जला रही है । जलाते २ सब राख हो गई इतना ध्यान करना ।
आगम द्रव्यकर्म	कर्म शास्त्र का जाननेवाला लेकिन वर्तमान में उसमें उपयोग नहीं रखने वाला आगम द्रव्य कर्म है ।
आगम भावकर्म	जो जीव (आगम) शारच्च का जानने वाला और वर्तमान समय में उसी शास्त्र का चिंतबन रुप उपयोग सहित हो उसे आगम भाव कर्म निश्चय से कहा है । आलाप श्लोक आदि के पाठ को आलाप कहते है ।
आग्रायणी पूर्व	इसमें अंगो में प्रधान भूत अंगो का वर्णन है ।
आघात	चोट ।

आचार्य	जो आचार्यो के ३६ मूल गुण और पंचाचारो का पालन करते है उनको उत्कृष्ट आचार्य कहते है ।
आचार्य परमेष्ठी	जो मुनियों को शिक्षा, दीक्षा, प्रायश्चित वगैरह देते है । ३६ मूल गुणों का पालन करते है, जो मुनि संघ के नायक तथा संघ का संचालन करते है और दर्शन ज्ञान, चारित्र और वीर्य के धारी हो ।
आचार	अपनी शक्ति के अनुसार सम्यग्दर्शन आदि में किया जाने वाला यत्न, आचारण, आचार कहलाता है ।
आचारांग	इसमें मुनियो के आचार का निरुपण है । द्वादशांग का पहला अंग । यह शास्त्र सर्व विरति (मुनि) के आचार-विचार का कथन है ।
आचाम्लाहार	काँजी सहित केवल भात के आहार को आचाम्लाहार कहते है ।
आचिन्न	योग्य वस्तु ।
आचेलक्य	वस्त्र के साथ खेत, घर, धन, धान्यादि सम्पूर्ण परिग्रहों का त्याग करना विवक्षित है ।
आछेद्य दोष	राज भय आदि के निमित्त से आहार लेना ।
आजीवक दोष	अपने हस्त विज्ञान, कुल, जाति, ऐश्वर्य, तप आदि का वर्णन करके भोजन प्राप्त करना ।
आर्जव	मन वचन काय की क्रियाओं के वक्र न रखने को तथा कपट के त्याग को ।
आठ सरसों	कुल सरसों का प्रमाण आठसरसों - १ यव ।
आठ यव	एक अंगुल ।
आत्म परिज्ञान	आत्मा का विशेष ज्ञान ।
आत्मानुभव	सम्यग्दर्शन का प्रधान चिन्ह है ।
आत्मा संवेद्य	संवेदन करने योग्य ।
आत्मदृष्टि	श्रद्धा ।
आत्मीय	स्व ।
आत्मांगुल	भरत ऐरावत क्षेत्र के चक्रवर्ती का अंगुल ।
आत्म प्रवाद पूर्व	१४ पूर्व में एक । इसमें आत्मा के स्वरुप का वर्णन है ।
आत्मा	जानने और देखने अथवा ज्ञान दर्शन शक्तिवाली वस्तु को आत्मा कहते है ।
आत्मार्थ	अपने लिये ।
आत्मा और जीव	पर्यायवाची शब्द है, इन दोनों मे कोई अन्तर नहीं है ।
आताप नामकर्म	इस कर्म के उदय से अनुष्ण शरीर में उष्ण प्रकाश निकलता है ।

	यह कर्म सूर्य में रहनेवाले ऐकेन्द्रियों को होता है ।
आर्तध्यान	वियोग और संयोग से होनेवाली मानसिक विकलता कि स्थिति में जो चिंतन होता है वह आर्तध्यान कहलाता है ।
आतशिक	गर्मी का रोग ।
आत्म व्यवहार	मात्र अविचलित चेतना ही मै हूँ ऐसा मानना परिणमनना सो आत्म व्यवहार है ।
आत्मदृष्टि	श्रद्धा ।
आदान निक्षेपण समिति	ज्ञान और चारित्र के उपकरण जमीन पर देखकर रखना और उठाना ।
आदेय नाम कर्म	इस कर्म के उदय से जीव बहुमान्य एवं आदरणीय होता है। प्रभायुक्त शरीर भी आदेय नाम कर्म की देन है ।
आध्यान	१२ भावनाओं का बार बार चिंतवन करना आध्यान कहलाता है ।
आधीन	वश ।
आनुपूर्वी	चार गति अपेक्षा - आगे की गति में जाते हुवे पूर्व शरीर के प्रमाण आत्मा का आकार रहे ।
आन्वीक्षिकी	इस राजविद्यासे अपना स्वरूप पहचानना, अपना बल जानना अच्छा बुरा समझ लेना ।
आन्तरा	अन्तरंग में होवे सो आन्तरा है ।
आनुपूर्व्य नामकर्म	देह त्याग के बाद नूतन शरीर धारण करने के लिये होने वाली गति को विग्रह गति कहते है । विग्रह गति में पूर्व शरीर का आकार बनाने वाले कर्म को आनुपूर्व्य नाम कर्म कहते है ।
आनयन	मर्यादित क्षेत्र से बाहर की सामग्री मँगवाना ।
आपृच्छनी भाषा	यह क्या है ? इस तरह के प्रश्न वचनों को याचनी भाषा कहते है ।
आपृच्छा	किसी भी कार्य के प्रारम्भ में गुरु की वन्दना करके उनसे पूछना ।
आप्त	वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी ये तीन गुण जिनमें होते है वे आप्त है । धर्म का मूल भगवान आप्त है । वह केवलज्ञान से युक्त । आप्त अर्थात शंका रहित । शंका अर्थात सकल मोह रागादिक ।
आप्तवाणी	जिनवाणी ।
आभ्यान्तर क्रिया	योग और कषाय को आभ्यान्तर क्रिया कहते है ।
आभ्यान्तर उपकरण	सब इन्द्रियों में जिससे निवृत्ति का उपकार हो, उसे आभ्यान्तर उपकरण कहते है ।
आभ्यान्तर निवृत्ति	आत्मा के विशुद्ध प्रदेशों के इन्द्रियाकार रचना विशेष को

	आभ्यान्तर निवृत्ति कहते है ।
आभ्यान्तर उपधि त्याग	कुछ समय के लिये अथवा जीवन पर्यंत के लिये शरीर के ममत्व को त्यागना आभ्यान्तर उपधि त्याग है ।
आम्नाय	शुद्धता पूर्वक पाठ करना आम्नाय है । उच्चारण की शुद्धिपूर्वकपाठ को पुनःपुनः दोहराना आम्नाय है ।
आमंत्रणी भाषा	यहाँ आओ, इस तरह के बुलानेवाले वचनों को आमंत्रणी भाषा कहते है ।
आमुण्डा	जिसके द्वारा संकोचित किया जाता है वह आमुंडा है ।
आमर्ष औषधि ऋद्धि (आम्र)	जिस ऋद्धि के प्रभाव से योगी के हाथ पैर आदि के स्पर्श मात्र से सर्वरोग दूर हो जाते है वह आमर्ष औषधि ऋद्धि है।
आर्यिका	उत्कृष्ट संयम धारी स्त्रियाँ आर्यिका कहलाती है । ये २८ मूलगुण का पालन करती है । इनके दो साड़ी मात्र परिग्रह और उपचार से महाव्रती है और बैठकर एक बार पात्र में आहार लेती है ।
आयुकर्म	जीव को किसी विवक्षित शरीर में टिके रहने की अवधि का नाम आयु है इस आयु का निमित्त भूत कर्म आयु कर्म कहलाता है । किसी एक गति में एक निश्चित अवधि तक बांधकर रखता है ।
आर्यकर्म	गृहस्थाश्रम में करने योग्य कर्म को आर्यकर्म कहते है ।
आयापाय दर्शिता	(गुणदोष प्रवक्तृता) आलोचना करने के लिये उद्यत हुये क्षपक (समाधिमरण करने वाले साधु) के गुण और दोषों के प्रकाशित करने को आयापाय दर्शिता कहते है ।
आयतन	सम्यग्दर्शन हेतु आयतन का अर्थ धर्म का आधार अथवा घर है ।
आयत	अधीन-स्वरुप ।
आरम्भ त्याग प्रतिमा	आजीविका के साधन भूत सभी प्रकार के व्यापार खेती बाड़ी नौकरी आदि का त्याग करना आरम्भ त्याग प्रतिमा है ।
आरंभी हिंसा	वह है जो गृहस्थी को आवश्यक संसारी कामों में करनी पड़ती है ।
आराधका भास	जो आराधक के यथार्थ लक्षण से रहित हो और आराधक के समान प्रतीत हो उसे आराधका भास कहते है ।
आलाप	श्लोक आदि के पाठ को आलाप कहते है ।
आलोचना	गुरु के समक्ष शुद्ध भाव से अपने दोषों को प्रकट करना ।
आलोकित पान भोजन	प्राकृतिक प्रकाश में भली भांति देख शोधकर खाना पीना, आलोकित पान भोजन है ।
आलब्ध दोष	उपकरण आदि प्राप्त करके वंदना करना ।

आवरण	आच्छादित करनेवाला ।
आवा	आग ।
आवद्य	पाप ।
आवश्यक	अवश्य करने योग्य क्रियायें आवश्यक कहलाती है ।
आशा	चिरकाल तक मेरे को सुख देनेवाले विषय उत्तरोत्तर अधिक प्रमाण से मिले ऐसी इच्छा करना उसको आशा कहते है ।
आशीविष रस ऋद्धि	जिस ऋद्धि के प्रभाव से मुनि के वचन मात्र से व्यक्ति मरता जीता है, वह आशीविष ऋद्धि है ।
आसादना	विराधना ।
आस्तिकाय	बहु प्रदेशी द्रव्यों को आस्तिकाय कहते है ।
आस्तिक्य	आत्मा, कर्म, कर्मफल और पुनर्जन्म आदि में विश्वास ।
आसिका	सम्यग्दर्शन आदि भावों में स्थिरता रखना ।
आहार	जो स्थूल शरीर के बनने योग्य पुद्‌गल को ग्रहण करना वह आहार है ।
आर्हत	जैन ।
आहारक वर्गणा	आहारक शरीर के रूप में परिणत होनेवाले पुद्‌गल ।
आहारक मार्गणा	औदारिक आदि शरीर के योग्य पुद्‌गल वर्गणाओं को जो नियम से ग्रहण करता है उसे आहारक मार्गणा कहते है ।
आहार शुद्धि	यत्न पूर्वक शोधन कर निर्दोष विधि से तैयार आहार का नाम आहार शुद्धि है ।
आहारक शरीर	ऋद्धि सम्पन्न मुनियों के शंका समाधानार्थ निकलनेवाला शरीर आहारक शरीर है ।
आहार समुद्धात	आहारक ऋद्धि से सम्पन्न मुनि द्वारा अपनी शंका के समाधान के लिये आहारक समुद्धात होता है ।
आक्षेपणी	तत्वो का निरुपण ।
आक्षेपिणी कथा	जिसमें मति आदि सम्यग्ज्ञानों का तथा सामायिक आदि सम्यगचारित्रों का निरुपण किया जाता है वह आक्षेपिणी कथा है ।
आश्रव भावना	आश्रव दुःख रुप है, ऐसा चिंतन करना ।
आश्रव	आत्मा में कर्मो के आने को आश्रव कहते है । यह कर्म आगमन का द्वार है ।
आश्रयणीय	आश्रय करने योग्य ।
आश्रम	धार्मिक जीवन की विभिन्न अवस्थाओं को आश्रम कहते है।
आज्ञापनी भाषा	यह काम करो, इस तरह के आज्ञा वचनों को आज्ञापनी भाषा

	कहते है ।
आज्ञा सम्यक्त्व	६ द्रव्य, ५ आस्तिकाय ९ पदार्थ को जिनेन्द्र देवने जैसा कहा है वही सत्य है, उसका श्रद्धान ही आज्ञा सम्यक्त्व है ।
आज्ञा प्रधानी	जो पुरुष परम्परामार्ग से देव गुरू के उपदेश को ज्योंत्यों प्रमाणकर विनयादि क्रिया रुप प्रवृत्ति करता है उसे आज्ञा प्रधानी कहते है ।
आज्ञा विचय धर्म ध्यान	सात तत्वों के स्वरुप का चिंतन करना, मोक्षमार्गदर्शक शास्त्रों का अध्ययन करना और जिन आज्ञा को प्रमाण मानना, आज्ञा विचय धर्म ध्यान है ।
आज्ञा समुयक्त्व	वीतराग जिनेन्द्र की आज्ञा मात्र का श्रद्धान करने से उत्पन्न सम्यक्त्व आज्ञा सम्यकत्व कहलाता है ।

इ- ई

इंगाल दोष	लम्पटता से आहार लेना इंगाल दोष है ।
इंगिनी मरण	जिस सल्लेखना में पर की वैय्यावृत्ति स्वीकार नहीं होती उसकी इंगिनीमरण संज्ञा है ।
इच्छानुलोम्नी भाषा	मुझको भी ऐसा ही होना चाहिये, ऐसे इच्छा को प्रकट करनेवाले वचनों को इच्छानुलोम्नी भाषा कहते है ।
इच्छाकार	सम्यग्दर्शन आदि इष्ट तत्वों को हर्ष पूर्वक स्वीकार करना अथवा उनमें स्वेच्छा से प्रवृत्ति करना ।
इज्या	अर्हंत भगवान की पूजा करना इज्या कहलाती है ।
इतर निगोद	जो निगोद से निकलकर दूसरा पर्याय पाकर फिर निगोद में उत्पन्न हुवा है उसे इतर निगोद कहते है ।
इत्वरिका गमन	चारित्र हीन स्त्री-पुरुषों की संगति में रहना, व्यभिचारीणी स्त्रियों के साथ उठना-बैठना, इत्वरिका गमन है ।
इतिभिति	आधि-व्याधि का नहीं होना ।
इत्वरिका	जिसका स्वभाव अन्य पुरुषों के पास जाना आना है वहस्त्री इत्वरी कहलाती है । इत्वरी अर्थात अभिसारिका ।
ईतभीत	संकट व भय । सात इति व सात भय ।
इति सिद्ध	ऐसा सिद्ध हुवा ।
इन्द्रिय	संसारी आत्मा के बाह्य चिन्ह विशेष को इन्द्रिय कहते है ।
इन्द्र ध्वज पूजा	इन्द्रों के द्वारा की जाने वाली पूजा ।
इन्द्रकेतु पूजा	महामण्डलिक राजाओं द्वारा की जाने वाली पूजा ।

इन्द्रिय मार्गणा — आत्मा के लिंग (चिन्ह) को इन्द्रिय कहते है अथवा जिसके माध्यम से आत्मा का ज्ञान हो उसे इन्द्रिय मार्गणा कहते है।

इन्द्रिय सुखाभास — १) यह सुख पराधीन है २) बाधा सहित है ३) टूटक (विच्छिन्न) है ४) बंध का कारण है ५) विषम (हीनाधिकरूप) है।

इन्द्रिय संयम — इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होने को इन्द्रिय संयम कहते है।

इष्ट वियोग आर्तध्यान — प्रिय वस्तु या व्यक्ति के वियोग होने पर उसकी प्राप्ति के लिये होनेवाली वियोग जन्य विकलता ही इष्ट वियोग आर्तध्यान है ।

इयत्ता — परिमाण ।

ईर्या समिति — प्रमाद छोड़कर चार हाथ जमीन देखकर चलना ।

ईर्या पथ आश्रव — निष्कषाय, जीवन मुक्त आत्माओं के केवल योग मात्र से होनेवाला आश्रव ईर्यापथ आश्रव कहलाता है ।

इर्यापथ — नीचे चार हाथ जमीन देखकर चलना ।

ईर्यापथ कर्म — जिन कर्मोका आश्रव होता है पर बंध नहीं होता उन्हे ईर्या पथ कर्म कहते है ।

ईशत्व विक्रिया ऋद्धि — सारे जगत में प्रभुता प्राप्त कराने वाली शक्ति ही ईशत्व विक्रिया ऋद्धि कहलाती है ।

ईशत्व — सारे जगत में प्रभुत्व की सार्मर्थ्य ।

ईहा — वितर्क या विचारणा । अवग्रह के द्वारा ग्रहण किये हुये सामान्य विषय को विषेश रुप से निश्चित करने के लिये जो विचारणा होती है । वह ईहा मतिज्ञान है ।

उ-ऊ

उपशामक — उपशम श्रेणी में आरूढ़ अपूर्व करण से सूक्ष्म साम्पराय गुण स्थान वर्ती साधक ।

उक्त (उक्त) — वचन आदिके द्वारा व्यक्त पदार्थों का अवग्रह आदि होना।

उग्रोग्र तप ऋद्धि — दीक्षोपवास के अनन्तर जीवन पर्यंत एक एक उपवास की वृद्धि पूर्वक जीवन को त्रिगुप्ति रूप बिताना उग्रोग्र तप ऋद्धि है ।

उच्च गोत्र — जिस कुल में लोकपूज्य आचरण की परंपरा है उसे उच्च गोत्र कहते है ।

उच्चार अंतराय — आहार के समय मुनि के उदर से विष्टा आदि निकल जाने पर ।

उच्छवास नामकर्म — इस कर्म की सहायता से श्वासोच्छवास संचालित होता है ।

उच्छिष्टावली — उदय से बने हुए प्रथम स्थिति के निषेक ।

उत्पाद के नामान्तर उत्पाद , संभव, भव, सर्ग, सृष्टि, भाव

उत्कर्ष समा दृष्टांत धर्म को साध्य के साथ मिलाने वाले को उत्कर्ष समा कहते है ।

उत्कृष्ट ज्ञान पूर्ण ज्ञान ।

उत्थित -उत्थित जो साधु खड़े होकर जिन मुद्रा से कायोत्सर्ग कर रहे है और उनके परिणाम भी धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान रुप है उनका यह कायोत्सर्ग उत्थित-उत्थित है ।

उत्सेध ऊँचाई ।

उत्तरित कायोत्सर्ग का एक दोष (अतिचार) ।

उत्तम क्षमा क्रोध का त्याग करके क्षमा धारण करना ।

उत्तम मार्दव मान का त्याग करके कोमलता धारण करना ।

उत्तम आर्जव मायाचार (कपट) का त्याग करके सरलता धारण करना।

उत्तम शौच लोभ का त्याग करके संतोष धारण करना ।

उत्तम सत्य निंदनीय कपटी वचन नहीं बोलना ।

उत्तम संयम पंचेन्द्रिय के विषयों को तथा मन के विषय को रोकना ।

उत्तम तप आत्मा के साथ लगे हुवे कर्मो को दूर करने के लिये तप करना (इच्छा का निरोध करना) ।

उत्तम त्याग क्रोधादि कषायों का त्याग और आहार, औषध, अभय और ज्ञान दान देने को त्याग धर्म कहते है ।

उत्तम ब्रह्मचर्य काम वासना का त्याग और पंचेन्द्रिय विषयों को रोकना तथा काम मात्र का त्याग ब्रह्मचर्य है ।

उत्तम आकिंचन जो शरीर आदि है उनमें भी संस्कार को दूर करने के लिये यह मेरा है इस प्रकार के अभिप्राय का त्याग करना । ममत्व बुद्धिका त्याग अतरंग और बाहिरंग ही आकिंचन है ।

उत्तम कुल आचार्यो के शिष्यों की परम्परा को उत्तम कुल कहते है ।

उत्तम मनोज्ञ जो आचार्य साधु और संघ को प्रिय हो उसे उत्तम मनोज्ञ कहते है ।

उत्तम सर्व श्रेष्ठ वस्तु को उत्तम कहते है ।

उत्तम पात्र जो महाव्रत और सम्यकत्व से सुशोभित हो वह उत्तम पात्र है ।

उत्तमार्थ प्रतिक्रमण (मरणकाल) मरण काल में सम्पूर्ण दोषों की आलोचना करके जो याज्जीवन चतुराहार का त्याग कर दिया जाता है वह उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है ।

उत्तराध्ययन अंगबाह्य उपसर्ग परीषह सहन करने का विधान करनेवाला शास्त्र ही उत्तराध्ययन अंग बाह्य है । यह ८ वां अंगबाह्य है ।

उत्कर्षण	पूर्वबद्ध कर्मों के स्थिति और अनुभाग के बढ़ने को उत्कर्षण कहतें है ।
उत्पाद	द्रव्य में नवीन पर्याय की उत्पत्ति को उत्पाद कहते है । उत्पन्न होना पर्याय है ।
उत्सर्पिणीकाल	विकासोन्मुख काल ।
उत्पाद पूर्व	इसमें वस्तु के उत्पाद व्यय और ध्रौव्य का वर्णन है ।
उत्सर्ग-समिति	(प्रतिष्ठापन) जीव रहित स्थान देखकर लघु शंका तथा शौचादि करना ।
उत्पीलन (अवपीड़क)	कोई साधु या क्षपक यदि दोषों को पूर्णतया नहीं निकालता है तो उसके दोषों को युक्ति और बल से बाहर निकाल लेना उत्पीलन गुण है ।
उत्सर्ग	बाह्य तथा अन्तरंग परिग्रहो में अहंकार ममकार रूप बुद्धि के त्याग करने को उत्सर्ग कहते है ।
उत्कृष्ट अन्तरात्मा	जो जीव पांच महाव्रतों से युक्त होते है, धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान में सदा स्थित रहते है । तथा जो समक्त प्रमादों को जीत लेते है उत्कृष्ट अन्तरात्मा है ।
उत्थित निविष्ट	जो कायोत्सर्ग मुद्रा में तो खड़े है किंतु परिणाम में आर्तध्यान और रौद्रध्यान चल रहा है , वह कायोत्सर्ग उत्थित निविष्ट है ।
उत्पादन दोष	साधु के निमित्त से आहार में होने वाले दोष उत्पादन दोष है।
उत्तर चूलिका दोष	वन्दना को थोड़े काल में पूर्ण कर उसकी चूलिका रुप आलोचनादि पाठको अधिक समय तक करना ।
उदक	जल ।
उद्‌गम दोष	गृहस्थों के आश्रित होने वाले दोषों को उद्‌गम दोष कहते है । (ये मुनिराज पालते है) ।
उद्दीष्ट त्याग प्रतिमा	अपने उद्देश्य से तैयार किये गये भोजन के ग्रहण का त्याग करना उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा है ।
उदय	जब कर्म अपना फल देना प्रारम्भ कर देते है उसे उदय कहते है ।
उदयाभावीक्षय	पूर्ण शक्ति के साथ कर्म उदय में न आकर शक्ति क्षीण होकर उदय में आना ही यहाँ क्षय या उदयाभावी क्षय कहलाता है ।
उद्योतनाम कर्म	चन्द्रकान्त मणि और जुगनु आदि की तरह शरीर में शीतल प्रकाश उत्पन्न करने वाला कर्म उद्योत नाम कर्म है ।
उद्यवन	चार आराधनाओं में हमेशा स्वयं की वृत्ति को एक मेक करना वह उद्यवन है ।

उद्रावण	जीव का उपद्रव करना उद्रावण कहलाता है ।
उदराग्नि प्रशमन वृत्ति	मुनिराज सम्यग्दर्शन आदि रत्नों की रक्षा हेतु उदरमें बढ़ी हुई क्षुधा रुपी अग्नि के प्रशमन हेतु सरस व नीरस कैसा भी आहार ग्रहण कर लेते है इसे उदराग्नि प्रशमन वृत्ति कहते है ।
उदीरणा	अपने नियतकाल से पूर्व ही पूर्व बद्धकर्मों का प्रयास पूर्वक उदय में लाकर उनके फलों को भोगना, उदीरणा कहलाती है ।
उद्वेग	चित्त में घबराहट ।
उदम्बर	बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर, पाकर, गुलर, अंजीर आदि फल उदम्बर फल है ।
उद्वेलना	अभाव ।
उद्वेलन संक्रमण	अधः प्रवृत्त आदि तीन करण रुप परिणामों के बिना ही कर्म प्रकृतियो के परमाणुओं का अन्य प्रकृतिरूप परिणमन होना, वह उद्वेलन संक्रमण है ।
उदरकृमि निर्गमन अन्तराय	मुख या गुदा मार्ग से पेट के कृमि निकलने पर उसे उदरकृमि निर्गमन अन्तराय कहते है ।
उद्योमी हिंसा	जो आजीविका साधन के हेतु आसि कर्म (शस्त्रकर्म) मसि कर्म, (लिखना), कृषि कर्म, वाणिज्य कर्म, शिल्प कर्म और विद्या कर्म इन कामों को करते हुवे होती है ।
उद्भिन्न दोष	ढक्कन से बंध अथवा सीलबंध / मुहर बंध घी, गुड़ आदि द्रव्य को उसी समय खोलकर देना, उद्भिन्न दोष है ।
उद्भाव	उत्पत्ति ।
उद्देश	पदार्थों के नाम मात्र कथन को उद्देश कहते है ।
उदासीन निमित्त	धर्म, अधर्म, द्रव्य उदासीन निमित्त है ।
उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा	साधु के उद्देश से बनाया हुवा भोजन को उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा कहते है ।
उर्ध्वलोक	मध्यलोक से उपर लोकांत तक उर्ध्व लोक है । उर्ध्व लोक में वैमानिक देवों का वास स्थान है । मुक्त जीव उर्ध्व लोक के शिखर पर विराजमान रहते है ।
ऊर्ध्वव्यतिक्रम	ऊपर जितनी दूर जाने का प्रमाण किया था उसको किसी कषायवश उल्लंघन कर आगे चले जाना या अज्ञान अथवा प्रमादवश उपर की सीमा का उल्लंघन करना ।
उनोदर	भूख से कम खाना ।

उन्मत्त	पागल ।
उन्मिश्र दोष	अप्रासुक वस्तु से मिश्रित आहार लेना ।
उपेय	साध्य ।
उपकार (पुद्गल का)	अपनी अर्थ क्रिया से पदार्थ स्वयं को तथा अन्य को प्रभावित करना उपकार या उपग्रह है ।
उपकरण	जिससे निवृत्ति की रक्षा होती है उसे उपकरण कहते है ।
उपक्रम	जो अर्थ को अपने समीप करता है उसे उपक्रम कहते है ।
उपगूहन अंग	अपने गुण और दूसरे के औगुण छिपाना और धर्म की वृद्धि करना इसे उपगूहन अंग कहते है -अपरनाम उपवृंहण
उपवृंहण	आत्मशुद्धि की दुर्बलता नहीं करना अर्थात सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र से स्खलित नहीं होना ही उपवृंहण है अर्थात बढाना ।
उपघात नामकर्म	इस कर्म के उदय से जीव विकृत बने हुवे अपने ही अवयवों से कष्ट पाता है ।
उपचार विनय	अपने से गुणों में बड़े आचार्यादि के प्रति अनुकूल वृत्ति रखते हुवे उन्हे बहुमान देना, उनके पीछे पीछे चलना उपचार विनय है ।
उपचार	अन्य वस्तु के धर्म को प्रयोजन वश अन्य वस्तु में आरोपित करना उपचार कहलाता है ।
उपचरित काय	जिनके प्रदेश खण्डित हो अथवा बन्ध होकर एकत्व को प्राप्त होने की संभावना हो उनको उपरिचित काय कहते है।
उपदेश सम्यकत्व	पुराण पुरुषों के चरित्र श्रवणसें उत्पन्न श्रद्धान ।
उपदेश	वचन अथवा चाबुक आदि के द्वारा बताये हुए कर्तव्य को उपदेश कहते है ।
उपादान कारण	जो स्वयं कार्यरुप में परिणमित हो उसे उपादान कारण कहते है । जिस पदार्थ में कार्य निष्पन्न होना है उसे उपादान कारण कहते है।
उपादन	जो पदार्थ स्वयं कार्यरुप परिणमें ।
उपादेय	ग्रहण करनें योग्य ।
उपाध्याय	जो ११ अंग और १४ पूर्व के पारगामी है तथा शिष्यों को पढाने में सदा तत्पर रहते है उनको उपाध्याय कहते है ।
उपचरित असद्भूत व्यवहार नय	बिल्कुल भिन्न वस्तु को किसी की कहना ।
उपभोग	जो बार बार भोगने में आवे वह उपभोग है ।
उपादेय तत्व	आखिर के तीन (५) संवर (६) निर्जरा (७) मोक्ष ये तीनों तत्व

	जीव के लिये उपादेय है ।
उपधिवाक्	जिसे सुनकर परिग्रह के अर्जन, रक्षण आदि में आसक्ति उत्पन्न हो वह उपधि वाक् है ।
उपधि	अच्छे परिणाम को ढंककर धर्म के निमित्त से चोरी आदि दोषो में प्रवृत्ती करना उपधि संज्ञक माया है ।
उपधान शुद्धि	कुछ नियम लेकर अर्थात जब तक यह ग्रंथ पुरा न हो तब तक मेरा दुध का त्याग है, इत्यादि नियम लेकर ग्रंथ पढ़ना।
उपधानाचार	शास्त्र के मूल एवं अर्थ का बार बार स्मरण करना उसे विस्मृंत नहीं होने देना अथवा नियम विशेष पूर्वक पठन पाठन करना उपधानाचार है ।
उपाध्याय परमेष्ठी	जो मुनियों को पढ़ाते है, स्वयं पढ़ते है, ११ अंग और १४ पूर्व के पाठी होते है और २५ मूलगुण के धारी होते है ।
उपधान सहित	अर्थात अमुक शास्त्र के अभ्यास दर्मियान खास नियम व्रत पालना ।
उपपाद जन्म	माता-पिता के बिना, रजवीर्य के संयोग से जो जन्म होता है उसे उपपाद जन्म कहते है ।
उपपाद	किसी भी विवक्षित भव के प्रथम समय की पर्याय को उपपाद कहते है ।
उपमान	प्रसिद्ध पदार्थ की तुल्यता से साध्य के साधन को उपमान कहते है ।
उपमा सत्य	प्रसिद्ध सदृश पदार्थ को उपमा कहते है, उसके आश्रय से जो वचन बोला जाय उसको उपमा कहते है ।
उपमामान	जो प्रमाण किसी पदार्थ की उपमा देकर कहा जाय उसे उपमामान कहते है ।
उपभोगान्तराय कर्म	जिस कर्म के उदय से प्राप्त उपभोग्य वस्तु का उपभोग न किया जा सके वह उपभोगान्तराय कर्म है ।
उपयोग	आत्मा के चैतन्य गुण का अनुसरण करनेवाले परिणाम को उपयोग कहते है । उपयोग ३ है (१) अशुभपयोग (२) शुभोपयोग ३) शुद्धोपयोग
उपायविचय धर्म ध्यान	आत्म कल्याण के उपायों का चिंतन ।
उपाय	साधन ।
उपशांत मोह गुणस्थान	जहाँ पर जीवों के सम्पूर्ण मोहनीय कर्म का उपशमन हो जाता है उसे उपशांत मोह कहते है और उसके स्थान को उपशांत मोह गुणस्थान कहते है ।
उपस्थापना	किसी बड़े भारी दोष के लगने पर उस दोष के परिहार के लिये पूरी

दीक्षा का छेदकर फिर से दीक्षा देना, उपस्थापना है ।

उपसंपत — गुरुजनों के लिये मैं आपका ही हूँ ऐसा समर्पण करना ।

उपासका ध्ययन — इसमें श्रावक ग्रहस्थ (देशविरति) के आचार का वर्णन है । (यह द्वादशांग का ७ वा अंग है) यह शास्त्र है ।

उपशम श्रेणी — चारित्र मोहनीय कर्म के उपशम के लिये किया जाने वाला आरोहण उपशम श्रेणी है ।

उपवास — निकट वास करना ।

उपशम — दबना । हर्ष और विषाद में उद्विग्न न होना। उदय में आ रहें कर्मो के फल देने की शक्ति को कुछ समय के लिये दबा देना उपशम है ।

उपयोग संक्रांति के पर्यायवाची शब्द — उपयोग संक्रांति, पुनर्वृत्ति, क्रम वर्तित्व, विकल्प, ज्ञाप्ति परिवर्तन। उपयोग का बदलना ।

उपासक — श्रावक ।

उपलब्धि — प्राप्ति ।

उपवन — बाग ।

उपरक्ति — राग -अशुद्धता ।

उपालम्भ — स्थापना अर्थात साधन और प्रतिषेध अर्थात उपालम्भ ।

उपाशांत मोह — ग्यारवें गुण स्थानवर्ती साधक ।

उपसर्ग अन्तराय — आहार के समय देव, मनुष्य या तिर्यंच किसी के द्वारा उपसर्ग होने पर ।

उपवेशन अन्तराय — आहार करते हुवे भूमि पर बैठ जाने पर ।

उपांशु जाप्य — कायोत्सर्ग में वचन द्वारा ऐसा उच्चारण करे कि जिससे अपने पास बैठा हुवा भी कोई भी न सुन सके उसे उपांशु जाप्य कहते है ।

उपशम भाव — कषायो के मन्द होने से उत्तम क्षमा आदि रुप जो परिणाम होते है उन्हे उपशम भाव कहते है ।

उपशम सम्यक्त्व — दर्शन मोहनीय के उपशम से पदार्थों का जो निर्मल श्रद्धान होता है उसको उपशम सम्यक्त्व कहते है । सम्यक्त्व विरोधी ७ कर्म प्रकृतियों के उपशम/दबने से उत्पन्न सम्यक्त्व उपशम सम्यग्दर्शन है ।

उपलक्षित — लक्ष में लिया गया ।

उपविष्ट उत्थित — जो बैठकर योग मुद्रा में कायोत्सर्ग कर रहे है किंतु अंतर में धर्म ध्यान या शुक्लध्यान रूप उपयोग चल रहा है उनका वह कायोत्सर्ग उपविष्ट उत्थित है ।

उपविष्ट निविष्ट — जो बैठकर आर्तध्यान या रौद्रध्यान रुप परिणाम कर रहे है उनका

	यह कायोत्सर्ग उपविष्ट निविष्ट कहलाता है ।
उपभोग परिभोगानर्थक्य	भोग व उपयोग के पदार्थ वृथा संग्रह करना ।
उभय दृष्टि के नामान्तर	प्रमाणदृष्टि,उभयदृष्टि, अविरुध्ददृष्टि, मैत्रीभाव दृष्टि, सापेक्ष दृष्टि।
उभय मनोयोग	सत्य और असत्य के मिश्रण से होनेवाली मन की प्रवृत्ति ही उभय मनोयोग है ।
उभयबंध	जीव और कर्म के निमित्त नैमेत्तिक संबंध को उभय बंध कहते है ।
उराल (उदार)	मनुष्य और तिर्यंच का शरीर वैक्रियिक आदि शरीरों की अपेक्षा से स्थूल होता है अतएव उसको उराल (उदार) कहते हैं ।
उष्णोदक	गरम जल ।

ए-ऐ

एक कोस	दो हजार धनुष लम्बाई अर्थात एक व्यवहार योजन ।
एक धनुष	चार हाथ ।
एक हाथ	चौबीस अंगुल
एक अंगुल	आठ यव ।
एक	एक वस्तु का अवग्रह आदि होना ।
एक भुक्ति	(एक भक्त - २४ घंटे (एक दिन) में एक बार आहार जल ग्रहण करना ।
एक विध	एक प्रकार की वस्तु का अवग्रह आदि होना ।
एक बड़ा योजन	५०० व्यवहार योजन ।
एक भक्त	एकासना (साधु का मूलगुण)
एकार्थ	प्राणभूत असाधारण लक्षण को एकार्थ कहते है ।
एकेन्द्रिय जीव	जिन जीवों के स्पर्श विषय ज्ञान और उसका अवलम्बन रुप द्रव्येन्द्रिय मौजूद हो उनको एकेन्द्रिय जीव कहते है ।
एकेन्द्रिय निगोद	साधारण वनस्पति को ही एकेन्द्रिय निगोद कहते है ।
एकत्व वितर्कविचार	जिस शुक्ल ध्यान में श्रुत ज्ञान के आधार पर किसी एक ही द्रव्य गुण या पर्याय का योग और श्रुत वाक्यों के परिवर्तन से रहित चिंतन होता है यह एकत्व वितर्क विचार ध्यान कहलाता है ।
एकत्व भावना	यह जीव अकेला आया है और अकेला जानेवाला है ऐसा चिंतन करना ।
एकाकार	आत्माकार ।
एकान्त निथ्यात्व	वस्तु के किसी एक पक्ष को ही पूरी वस्तु मान लेना एकान्त मिथ्यात्व है ।

एलाचार्य	उपआचार्य ।
एवंभूत नय	समभिरूढ़ के द्वारा ग्रहण किये गये अर्थ को भी क्रिया की अपेक्षा भिन्न भिन्न नाम देने वाला नय एवंभूत नय है ।
एषणा समिति	निर्दोष शुद्ध आहार तप की वृद्धि के लिये लेना एषणा समिति है ।
एषणा दोष	आहार सम्बन्धी दोष ऐषणा दोष है ।
ऐर्या पथिक प्रतिक्रमण	आहार, गुरूवन्दना, देववंदना और शौचादि के लिये जाते समय जो जीवों की विराधना हुई हो, उसके दोषों को दूर करने के लिये महामंत्र का नव बार जाप्य किया जाता है वह ऐर्यापथिक प्रतिक्रमण है ।
ऐहिक फलान पेक्षा	इस लोक सम्बन्धी फल की अपेक्षा न रखना ।

ओ - औ

औघिक समाचार	- सामान्य (संक्षिप्त) आचार को औघिक समाचार कहते है।
औंगन	चिकनाई ।
औत्पत्ति की प्रज्ञा बुद्धि	पूर्व भव में किये गये श्रुत के विनय से उत्पन्न बुद्धि औत्पत्ति की प्रज्ञा बुद्धि है ।
औदयिकी	कर्मों के उदय में जुड़ने से होने वाली ।
औदयिक भाव	कर्मो के उदय से होने वाला भाव औदयिक भाव है।
औदारिक शरीर	मनुष्य और तिर्यंचो का स्थूल शरीर औदारिक शरीर है ।
औदारिक शरीर वर्गणा	स्थूल / औदारिक शरीर के रूप में परिणत होने वाले पुद्गल।
औदारिक मिश्रकाय योग	शरीर पार्यप्ति से पूर्व कार्मण शरीर की सहायता से होनेवाले औदारिक काय योग को औदारिक मिश्र काय योग कहते है ।
औदेशिक दोष	नागादि देवता, पाखण्डी साधु तथा अन्य दीन हीन जनों के उद्देश्य से निर्मित आहार मुनियों को प्रदान करना ।
औपशमिक चारित्र	चारित्र मोहनीय कर्म के उपशम से औपशमिक चारित्र होता है ।
औपशमिक भाव	मोह कर्म के उपशम से होने वाली आत्मा की अवस्था औपशमिक भाव है ।
औपशमिक सम्यक्त्व	मोहनीय कर्म के उपशम से औपशमिक सम्यक्त्व ।

अं अः

अंकुशित - दोष	अपने ललाट पर अपने हाथ के अंगुष्ठ को अंकुश की तरह रखना ।

अंकुशित — कायोत्सर्ग का एक अतिचार ।

अंग प्रविष्ट — जिनका अपर नाम द्वादशांग वाणी है । द्रव्य श्रुत में गणधरों द्वारा शास्त्र १२ अंग प्रविष्ट है ।

अंगबाह्य — गणधरों के वचन के आधार पर उनके पश्चात उनके शिष्यों, परिशिष्यों तथा अन्य आचार्यों ने रचेले ग्रंथ, अंगबाह्य ग्रंथ है ।

अंगार दोष — लम्पटा पूर्वक आहार ग्रहण करना ।

अंगोपांग — जिस कर्म के उदय से शरीर के अंग और उपांगों की रचना होती है , वह कर्म अंगोपांग नाम कर्म है ।

अंतकृत केवली — जिन्होंने संसार का अंतकर दिया वे अन्तकृत केवली है ।

अंगामर्श दोष — कायोत्सर्ग करने में शरीर का स्पर्श करना ।

अंश का — पर्याय का ।

क

काकअन्तराय — आहार ग्रहण करते हुवे मुनि पर कौआ आदि पक्षी द्वारा बीट कर देने पर काक अन्तराय होती है ।

कर्कश स्पर्श नाम कर्म — जो छूने में कठिन मालूम हो ।

काकदि पिंडहरण अंतराय — आहार करते हुवे कौआ आदि पक्षीयों द्वारा ग्रास का हरण कर लेने पर काकादि पिंड हरण अन्तराय होती है ।

कुंचित दोष — संकुचित हाथों से सिर का स्पर्श करना या घुटनों के बीच सिर रखकर संकुचित होकर वंदना करना ।

कच्छ परिंगित दोष — बैठकर वन्दना करते हुवे कछुए के समान रेंगने की क्रिया करना ।

कूट — पर्वतो पर स्थित चोटियां ।

कोटा कोटी — एक करोड़ गुणित एक करोड़ ।

कोटि सहित प्रत्याख्यान — कल दिन में स्वाध्याय के अनन्तर यदि शक्ति होगी तो उपवास करुंगा अन्यथा नहीं करुंगा ऐसा संकल्प करके जो प्रत्याख्यान होता है वह कोटि सहित प्रत्याख्यान है ।

कूटलेख क्रिया — झूठे दस्तावेज तैयार करना, झूठे लेख लिखना, झूठी गवाही देना, किसी के जाली हस्ताक्षर बनाना अथवा झूठा अंगूठा लगाना, किसी पर झूठे आरोप लगाना, यह सब कूट लेख क्रिया है ।

कठूमर — फणस फल ।

कांडक — समय समूह में संक्रमण होना कांडक है ।

कुड्य दोष — दीवार आदि का आश्रय लेकर कायोत्सर्ग करना ।

कृतिकर्म	सामायिक स्तवपूर्वक कायोत्सर्ग करके चतुर्विंशतिस्तव पर्यंत जो विधि है जिससे कर्मों का छेद किया जाता है उसे कृतिकर्म कहते है ।
कौत्कुच्य	हँसी मजाक के साथ कुत्सित चेष्टा करना कौत्कुच्य है ।
कृतिकर्म अंगबाह्य	जिन देव, आचार्य, उपाध्याय, एवं साधुकी वंदना की क्रिया का निरुपण शास्त्र कृतिकर्म अंगबाह्य है ।
क्रीत दोष	मुनि के आहारार्थ घर में प्रविष्ट हो जाने के बाद, श्रावक द्वारा अपनी सचित्त या अचित्त वस्तु देकर आहार देना ।
कथंचित	किसी स्वरुप से - स्याद्वाद ।
कंदर्प	राग की तीव्रता में हंसी मजाक पूर्वक अशिष्ट वचन बोलना (काम-वासना) राग भाव की तीव्रतावश हास्य मिश्रित असभ्य वचन बोलना कन्दर्प है ।
कदलीघात मरण	अकाल मृत्यु ।
कनक-नग	(कनक-सोना), (नग - पहाड़) – सुमेरु ।
कन्द बीज	जिन वनस्पतियों का बीज कंद होता है उन्हे कन्द बीज कहते है । जैसे रतालु, सूरण वगैरह ।
कपित्थ दोष	कैथ की तरह मुट्ठी बांधकर कायोत्सर्ग करना ।
कुप्य	वस्त्र ।
कौपीन	लंगोटी ।
कापथ	कुमार्ग ।
कुब्जक	कुबड़ा शरीर बनाने वाले कर्म कुब्जक संस्थान नामकर्म है।
क्रमवर्ती (क्रमभू)	प्रत्येक समय की पर्याय को क्रमवर्ती कहते है । यहस्थूल है।
कूर्मोन्नत योनि	जो योनि कछुए की पीठ की तरह उठी हुई उसको कूर्मोन्नत योनि कहते है । इसमें तीर्थंकर और चक्रवर्ती उत्पन्न होते है।
क्रोध, मान, माया, लोभ दोष	(उत्पादन दोष) क्रोध, मान, माया और लोभ के निमित्त से आहार उत्पन्न करना क्रमशः क्रोध, मान, माया और लोभ दोष है ।
क्रम	एक के पीछे दूसरी, तीसरी, चौथी इस प्रकार बराबर के प्रवाह को क्रम कहते है ।
कर्म	आत्मा के असली स्वभाव को ढकने वाले पुद्गल परमाणु कर्म है ।
कर्म फल चेतना	सुख दुख रूप परिणमन करती है ।
कर्म प्रवाद पूर्व	१४ पूर्व के ८ वे पूर्व में कर्म सिद्धांत का सविस्तार वर्णन है।
कर्मवर्गणा	पुद्गल वर्गणा जो कर्म रुप परिणत होने की क्षमता रखती है, उन वर्गणाओं को कर्म वर्गणा कहते है ।

कर्माहार	कर्म का आश्रव ।
कर्म भूमि प्रति भाग	नागेन्द्र पर्वत के परवर्ती भाग में स्थित स्वयंभूरमण द्वीप और समुद्र ।
काम तीव्राभिनिवेश	काम की तीव्र लालसा स्व स्त्री में रखना ।
कर्मजा प्रज्ञा बुद्धि	पर उपदेश के बिना तपो विशेष से आविर्भूत कर्मजा प्रज्ञा बुद्धि है ।
कर्म चेतना	राग, द्वेष, मोहरूप परिणमन करती है ।
कुमार्ग	खोटे ध्यान ।
काम रूपित्व विक्रिया ऋद्धि	एक साथ मन चाहे अनेक रूपो का निर्माण करने की योग्यता काम रूपित्व विक्रिया ऋद्धि कहलाती है ।
कार्मण शरीर	कार्मण शरीर का अर्थ कर्मो का समूह । इसे सूक्ष्म शरीर अथवा संस्कार शरीर भी कहते है ।
काम	स्त्री पुरुष के परस्पर संयोग की अभिलाषा काम है । दो इन्द्रियो के विषय काम है । स्पर्श और रस तो काम है ।
कामद	मनोवांछित दाता ।
काय क्लेश तप	शारीरिक कष्टो को सहन करना । प्रयत्न पूर्वक कष्ट उपस्थित करना और सहन करना ।
काय दुष्प्राणिधान	शरीर की खोटी प्रवृत्ती (काय दु:प्राणिधान) ।
काय मार्गणा	जो संचित किया जाता है उसे काय कहते है अथवा जीवयुक्त पुद्‌गल को काय अर्थात शरीर कहते है ।
काय योग	काय - शरीर की प्रवृत्ति के निमित्त से होनेवाले आत्म प्रदेशों का परिस्पंदन ।
केयुर	भुजबंध ।
काय	शरीर जाति नाम कर्म के अविनाभावी त्रस और स्थावर नाम कर्म के उदय से होनेवाली आत्मा की पर्याय को जिन मत में काय कहते हैं या जिनके प्रदेश अनेक हो उसे काय कहते है ।
काय शुद्धि	शरीर के वस्त्रादिकों की शुध्दिपूर्वक संयत आचार करने को काय शुध्दि कहते है ।
कायत्व	बहुप्रदेशी को कायत्व या आस्तिकाय कहते है ।
कायोत्सर्ग	काय से ममत्व का त्याग करना कायोत्सर्ग है । दोनों हाथ लटकाकर जिन मुद्रा से निश्चल होकर शुभ ध्यान में स्थिर होना कायोत्सर्ग है ।
कायोत्सर्ग आवश्यक	शरीर से ममता का त्याग करना ।
किया विशाल पूर्व	इसमें छन्द, व्याकरण, अलंकार आदि रूप पुरुषों की ७२ कला

और स्त्रियों के ६४ गुणों का वर्णन है ।

क्रिया	इच्छापूर्वक हाथ पैर चलाने को क्रिया कहते है ।
करणलब्धि	परिणामों की उत्तरोत्तर विशुद्धि को करण लब्धि कहते है।
करणानुयोग	(गणित और परिणाम) लोकालोक विभाग को युगों अर्थात काल के परिवर्तन को चार गतियों को और लेश्या, कषाय, योगादि में कर्मो की न्यूनाधिकता से उसके परिवर्तन को तथा कर्मो के बंध, उदय, सत्ता, क्षय, उपशम, क्षयोपशमादि ऐसे करणानुयोग को दर्पण सदृश्य जानता है । इसका प्रत्येक विषय गणित से सम्बन्ध रखता है जैसे इसके ग्रंथ-गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणसार, त्रिलोकसार आदि ।
करण	जीव के शुभ अशुभ भावों के आश्रय से उत्पन्न होने वाली कर्मो की इन दशाओं को जैन आगम में करण शब्द से जाना जाता है । या परिणाम अर्थात अशुभ योग प्रवृत्ति के परिहार को करण कहते है ।
करणेन्द्रिय निरोध	सुन्दर सुन्दर गीत वाद्य तथा असुन्दर निंदा गाली आदि के वचनों में हर्ष विषाद नहीं करना ।
कारण दोष	विरुध्द कारणों से आहार लेना (मुनि के लिये) कारण दोष है ।
काल के नाम	यम, कृतांत, अन्तक, त्रिदश, आवर्ती, मृत्युस्थान, प्राण-हरण, आदित्यत नय ये काल के नाम है ।
कालाचार	शास्त्र पढ़ने योग्य काल में ही पढ़ना, अयोग्य काल में नहीं। दिग्दाह उल्कापात, सूर्य-चन्द्र ग्रहण, संध्याकाल आदि में शास्त्र नहीं पढ़ना चाहिये ।
काल सामायिक	ग्रीष्म शीतादि ऋतुओं और भी अनुकूल, प्रतिकूल समयों में राग, द्वेष नहीं करना काल सामायिक है ।
कलल अवस्था	जो अवस्था माता के रज और पिता के वीर्य के मिलने से होती है उसे कलल अवस्था कहते हैं ।
कल्प्य	योग्य ।
कल्पवृक्ष	मनुष्यों को कल्पित / इच्छित वस्तुओं को प्रदान करनेवाले होने के कारण इन्हे कल्पवृक्ष कहा जाता है ।
कल्मश	मिथ्यात्व पाप ।
कुलकर	ये कुशल मनीषी जो कर्म भूमि के आरम्भ में होते है एवं मानव समूहों को कुलोंके आधार पर व्यवस्थित कर कर्म मूलक मानव सभ्यता के सूत्रधार बनते है , वे कुलकर कहलाते है ।

कुलक्रम	गुरु आम्नाय ।
कल्प स्वर्गो	सोलह स्वर्गो ।
कलंकित	मलिन ।
कल्याण	आत्म लब्धि ।
काल प्रतिकमण	काल के आश्रय से होनेवाले अतिचार हटाना काल प्रतिक्रमण है ।
काल द्रव्य	जो समस्त द्रव्यो को परिणमन करने में सहायक हो उसे काल द्रव्य कहते है ।
कालातिक्रम	आहारदान के काल का उल्लंघन करके पड़गाहन आदि करना ।
काल	द्रव्य के परिणमन को काल कहते हैं ।
काल (सिद्ध) अनुयोगद्वार	वर्तमान की दृष्टि से जिस समय कर्मो से मुक्त हुवे सिध्द होने का वही काल है तथा अतीत की अपेक्षा सामान्य रूप से उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी काल में जीव सिद्ध होते है ।
काल लब्धि	जीव के संसार में भटकने का काल अर्ध पुद्गल परावर्तन प्रमाण शेष रहता है तब यह प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करने के योग्य होता है उसे काल लब्धि कहते है ।
कालस्तव	गर्भावतार, जन्म दिवस आदि के दिनों में स्तुतिकरना काल स्तव है ।
काल शुद्धि	स्वाध्याय के बेला में पठन, सच्चे शास्त्रों का परिवर्तन व्याख्यान आदि करना काल शुद्धि है ।
कल्पवासी देव	(कल्योपन्न देव) जहाँ तक इन्द्र आदि दस प्रकार के देवों की कल्पना होती है, उन्हे कल्पवासी देव कहते है ।
कल्पातीत देव	ऊपर के विमानों में निवास करनेवाले देव कल्पातीत कहलाते है ।
कुलसाधु	दीक्षा दायक आचार्य की शिष्य परम्परा कुल कहलाती है ।
कल्याणपूर्व	१४ पूर्व में यह ११ वां पूर्व, इसमें तीर्थंकरो के पंचकल्याणकों एवं बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती आदि के पुण्यों का वर्णन है ।
कल्पव्यवहार अंगबाह्य	इसमें मुनियों के सेवन करने योग्य विधि का वर्णन और अयोग्य सेवन करने पर प्रायश्चित का विधान है ।
कल्पाकल्प अंगबाह्य	मुनियो और गृहस्थों के योग्य -अयोग्य आचार का विवेचक शास्त्र है ।
कुल	जीवों के प्रकार को कुल कहते है ।
कुलीन	पुज्य
कलकल पृथ्वी	सातवें नरक के नीचे की एक राजु के क्षेत्र को कलकल पृथ्वी कहते है । उसमें एक मात्र निगोदियां जीवों का वास रहता है ।

कल्याणक	तीर्थंकरो के लिये देव जो उत्सव मनाते है उन्हे कल्याणक कहते है ।
कीलित संहनन	हड्डी से हड्डी कीलीत हो ।
कलुषता	मैल - कषाय ।
केवल ज्ञान	समस्त ज्ञानावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न होता है इसलिये वह एक और अकेला रहता है और संसार के सब पदार्थो को एक साथ जानता है । इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना ही त्रिलोक और त्रिकाल वर्ती समस्त द्रव्यों और उनकी पर्यायों को एक साथ स्पष्ट जाननेवाला ज्ञान ।
केवल ज्ञानावरण कर्म	केवलज्ञान को उत्पन्न नहीं होने देता ।
केवल दर्शन	केवल ज्ञान के साथ होने वाला सामान्य प्रतिभास केवल दर्शन है ।
केवल दर्शनावरण कर्म	सर्व द्रव्यों और पर्यायों के युगपत होने वाले सामान्य अवबोधदर्शन को व्यक्त नहीं होने देता ।
कवलाहार	ग्रास बनाकर किया गया आहार अर्थात कवलाहार।
कवित्व	कविता करने की शक्ति ।
केवली	केवलज्ञानसे युक्त परमात्मा ।
केवली भगवान के अनेक नाम	सर्वगत, सार्व, सर्वज्ञ, सर्वोत मुख, विश्वव्यापी, विभु, भर्ता, विश्वमूर्ति और महेश्वर ।
केवली समुद्घात	जब आयुकर्म की स्थिति अल्प और वेदनीय कर्म की स्थिति अधिक होती है तब उनका समीकरण करने के लिये केवली भगवान के आत्मप्रदेश मूल शरीर से बाहर निकलते है इसे केवली समुद्घात कहते है ।
कोष्टबुद्धि	अनेक प्रकार के ग्रंथ श्रुत पद वाक्यरूप बीजों को बुद्धिरूपी कोठे में ज्यों की त्यों अवधारित रखनेवाली बुद्धि (कोष्ट)।
कषाय	कषाय आत्मा की एक वैभाविक पर्याय (अवस्था) है । क्रोध आदि भावों को कषाय कहते है । (जो आत्मा को कसे वह कषाय)
कृषि कर्म	खेती बाड़ी करना ।
कषाय-कुशील मुनि	अन्य समस्त कषायों पर विजय पाकर मात्र संज्वलन कषाय के आधीन मुनियों को कषाय कुशील मुनि कहते है ।
कषाय मार्गणा	जो आत्मा को कसे, दुःख दे, अथवा जो आत्मा के चारित्र गुण का घात करती है उसे कषाय मार्गणा कहते है ।
कषाय समुद्घात	कषाय की तीव्रता वश आत्म प्रदेशो का अपने शरीर से तिगुने प्रमाण में बाहर निकलना कषाय समुद्घात है ।

केश लोंच	हाथो से अपने सिर दाढ़ी और मूछ के बाल उखाड़ना , केशलोंच मूल गुण है ।
कौशल्यता	परमात्म भक्ति, पर परिणाम और पाप परित्याग (रूप) स्वरुप, भावसंवर और शुद्ध भाव पोषक क्रिया को कौशल्यता कहते है ।
कांक्षा	भौतिक भोगोप भोगों एवं ऐहिक सुखों की अपेक्षा रखना कांक्षा है ।
कृशता	दुर्बलता ।
कुहर	मध्य ।

ख

खग	(ख -आकाश) (ग-गमन) - सूर्य ।
खाद्य	खाने की वस्तु अर्थात दाल, रोटी, पूड़ी बगैरह ।
खद्योत	जुगनु ।
खलु	निश्चय से ।
खण्डवस्तु	अवस्तु ।
खलीन दोष	जैसे घोड़ा लगाम लग जाने से दांतो को घिसता कट-कट करता हुवा सिर को ऊपर नीचे करता है वैसे ही दांतो को कट-कटाते हुवे सिरको ऊपर नीचे करना खलीन दोष है ।

ग

गच्छ	सात मुनियों का होता है ।
गोचार प्रतिक्रमण	आहार सम्बन्धी प्रतिक्रमण गोचार प्रतिक्रमण है (दैवासिक में)
गोचरी वृत्ति	मुनि स्वादिष्ट व्यंजन की इच्छा नहीं रखते हुवे दाता के द्वारा प्रदत्त प्रासुक आहार ग्रहण कर लेते है यह गौ के आचरणवत गोचर या गोचरीवृत्ति है ।
गोचरी भूत	अभ्यस्त ।
गूढ़ ब्रह्मचारी	जो कुमारावस्था में ही मुनिवेश धारण करते है, शास्त्रों का अध्ययन करते है और बाद में कारण पड़ने पर गृहस्थ धर्म स्वीकार करते है वे गूढ़ ब्रह्मचारी है ।
गणसाधु	वृद्ध साधुओं की सन्तति "गण" है ।
गण	बाल और वृद्ध मुनियों के समुदाय को गण कहते है ।
गणधर देव (गणधर)	गण को धारण करनेवाले मुनि अर्थात ७ ऋद्धि और ४ ज्ञान के धारी गणधर देव ने द्वादशांग की रचना की ।
गणिनि	आर्यिकाओं में जो प्रमुख होती है वह गणिनि कहलाती है।

गुणश्रेणी	उदय क्षण से लेकर प्रतिसमय असंख्यात गुणें कर्म निषेकों की रचना को गुण श्रेणी कहते है ।
गुण	जो द्रव्य के सब भाग और सब हालतों में सदा रहता है । त्रिकाल शक्ति ।
गुण क्या क्या है	सम्यकत्व की उत्पत्ति होना, वृद्धि होना, निर्जरा होना, संवर होना, संवर निर्जरा की वृद्धि होना, पुण्य बंधना, पुण्य का उत्कर्षण होना, पाप का अपकर्षण होना, पाप का पुण्य रूप संक्रमण (गुण) है ।
गुण प्रतिसम्पन्न	मिथ्यादृष्टि ।
गुणहानि	गुणाकार रूप से हीन हीन द्रव्य जिसमें पायाजाय उसको गुणहानि कहते है ।
गुणव्रत	जो अणुव्रतों का उपकार करे । अणुव्रतों को दृढ करनेवाले व्रत ।
गुण संक्रमण	गुण संक्रमण में प्रति समय असंख्यात गुणित क्रम से अबद्धमान अशुभ कर्म प्रकृतियों के कर्म निषेकों का उस समय बंधनेवाली सजातीय प्रकृतियों में संक्रमण परिवर्तन होता है ।
गुणस्थान	मोह ओर योग के निमित्त से आत्मा के दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप गुणों की अवस्था विशेष को गुणस्थान कहते है ।
गुणश्रेणी	उदय क्षण से लेकर प्रतिसमय असंख्यात गुणें कर्म निषकों की रचना के कर्म निषेतों का उस समय बंधने वाली सजातीय प्रकृतियों को गुणश्रेणी कहते है ।
गुणप्रत्यय अवधिज्ञान	सम्यक्त्व से अधिष्ठित अणुव्रत और महाव्रत गुण जिस अवधि ज्ञान के कारण है वह गुण प्रत्यय अवधिज्ञान है । यह मनुष्य और तिर्यंचो में होता है ।
गुण के नाम	गुण, स्वभाव, शील, आकृति, शक्ति, लक्षण, विशेष, धर्म, रूप, प्रकृति, अर्थ, अन्वयी, सहज, अवस्थित ।
गुणांश	गुण के एकएक अविभाग प्रतिछेद को गुणांश कहते है ।
गौण (नास्तिरूप) के नामांतर	अविवक्षित, अवमग्न, अनर्पित, प्रतिलोम, निमज्जत ।
गति (सिद्धअनुयोग द्वार)	वर्तमान की अपेक्षा सिद्धगति में ही जीव होते है।अतीत की दृष्टि से यदि अन्तिम भव की अपेक्षा से विचार करे तो मनुष्यगति से सिद्ध होते है ।
गति मार्गणा	जो प्राप्त किया जाय उसे गति कहते है अथवा जिस नाम कर्म के

	उदय से जीव भव से भवान्तर में गमन करता है उसे गति मार्गणा कहते है ।
गतरूप	रूपातीत ।
गति	कर्म के उदय से मिलने वाली पर्याय को गति कहते है ।
गति नाम कर्म	जिस नाम कर्म के उदय से जीव एक जन्म स्थिति से अगली जन्म स्थिति में जाता है वह गति नाम कर्म है ।
गुप्ति	मन, वचन और काय की प्रवृत्ति को रोकने को गुप्ति कहते है ।
ग्रंथ	अर्थात व्यंजन शुद्धि मतलब शुद्ध उच्चारण से पाठ करना।
ग्रंथि	गाँठ ।
ग्रंथार्थ	अर्थ समझकर शुद्ध उच्चार करना ।
गंध नाम कर्म	शरीर को सुंगध एवं दुर्गन्ध प्रदान करनेवाले कर्म को गंध नाम कर्म कहते है ।
गांधार स्वर	जो स्वर नासिका प्रदेश में स्थित होता है उसे गान्धार कहते है । (बकरी का स्वर गांधार)
गर्भ जन्म	स्त्री के उदर में रज और वीर्य मिलने से जो जन्म होता है वह गर्भ जन्म है ।
गमकत्व	टीका करने की शक्ति ।
गोम्मटसार	दूसरा नाम पंचसंग्रह- १. जीवट्ठाण २. खुदाबन्ध ३. बन्ध स्वामी ४. वेदना खण्ड ५. वर्गणा खण्ड ।
ग्रामदाह अंतराय	जिस ग्राम में मुनि का आवास हो उसमें आग लगने पर ।
गुरुभक्ति	गुरु की सेवा करना ।
गौरव दोष	अपना माहात्म्य आसन आदि द्वारा प्रगट करके अथवा सरस भोजन आदि की स्पृहा रखकर वन्दना करना ।
गरिमा महाऋद्धि	शरीर को वज्र की तरह भारी बना लेने की सामर्थ्य ।
गुरू	आचार्य उपाध्याय और साधु गुरू है ।
ग्लान	जिनका शरीर किसी रोग से रोगी हो रहा है और जो अपने व्रत से च्युत नहीं है उनको ग्लान कहते है ।
गलित माहात्म्य	गल गया है, नष्ट हो गया है माहात्म्य महिमा या जितने का उत्साह जिसका, उसे गलित माहात्म्य कहते है ।
ग्लान मुनि	रोगाक्रांत साधु ग्लान कहे जाते है ।
ग्रीवोन्न मन दोष	कायोत्सर्ग करते समय गर्दन को ऊँची उठाना ।
गौसर्गिक (पौर्वाह्रिक)	सूर्योदय से दो घड़ी (४८मिनट) बाद से लेकर मध्यान्ह के दो घड़ी

स्वाध्याय काल	पहले तक पौर्वाह्निक स्वाध्याय का काल है ।
गर्हा	गुरु के पास अपना दोष प्रकट करना गर्हा है ।
गृहीत	व्युद्ग्राहिक (अस्वभाविक)। जो पुद्गल पहिले ग्रहण किये हो उन्हे गृहीत कहते है ।
गृहस्थाश्रम	विवाह के अनन्तर कुलाचार के पालन पूर्वक धर्माचरण से रहना गृहस्थाश्रम है ।
गृहारंभी हिंसा	जो हिंसा गृह में आहार पान के प्रबन्धार्थ, मकान बनाने कूप खुदाने, बाग लगाने आदि में होती है ।
गृहीत मिथ्यात्व	विपरीत एकांत, विनय, संशय, अज्ञान जो किसी कुसंग से लिया जावे ।
गृहीत मिथ्या दर्शन	कुगुरु, कुदेव और कुधर्म की सेवा को गृहीत मिथ्यादर्शन कहते है ।
गृहीत मिथ्या ज्ञान	एकान्त हठवाद से खोटे विषय वासना को पुष्ट करनेवाले शास्त्रों का अभ्यास करना गृहीत मिथ्याज्ञान है ।
गृहीत मिथ्या चारित्र	जो ख्याति, लाभ, पूजादि (मान्यता) आदि की चाह से नाना प्रकार से शरीर जलाने वाली देह और जीव के ज्ञान से रहित शरीर को कमजोर करनेवाले अनेक प्रकार के कार्य है वे सब मिथ्या चारित्र है ।
गर्हित वचन	पैशुन्य, हास्य, कर्कश, असमंजस, इत्यादि अन्य और भी आगम विरुध्द वचन कहना गर्हित वचन है ।
गृहीतार्थ विहार	मुनियों का चारित्र पालन करते हुवे देशांतर में विहार है वह गृहीतार्थ विहार है (जीवादि तत्वों के स्वरुप के ज्ञाता मुनि)।
गोत्र कर्म	उच्च नीच कर्म कुलीन घरों में उत्पन्न कराता है । यह प्राणी को अच्छी या बुरी दृष्टि से देखे जाने में निमित्त भूत है ।

घ

घटाकार	पर्याय में ज्ञान के घट जानने की ताकत का नाम घटाकार है ।
घटकार	कुम्हार ।
घोटक दोष	घोड़े के समान एक पैर उठाकर अर्थात एक पैर से भूमि को स्पर्श न करते हुये खड़े होना ।
घोटमान योग	जिन योग स्थानों की वृद्धि भी हो, हानि भी हो, अथवा जैसे के तैसे भी रहैं, उन योग स्थानों को घोट मान योग कहते है ।
घ्राणेन्द्रिय निरोध	सुगंधित पदार्थो में या दुर्गंधित वस्तु में राग द्वेष नहीं करना।
घातियाँ	जो कर्म जीव के अनन्त चतुष्टय गुण का घात करे।

घातियां कर्म	ये आत्मा के मौलिक गुणों का घात करते है ।
घृतस्त्रावी रस ऋद्धि	जिस ऋद्धि के प्रभाव से ऋषि के हाथ में रखा गया आहार घृत रूप परिणत हो जाता है वह घृत स्त्रावी ऋद्धि है ।
घन	कांसे के बाजे के शब्द को घन कहते है ।
घोर तप ऋद्धि	जिस ऋद्धि के प्रभाव से मुनिगण महाज्वर, शूल आदि रोगों के तीव्र उद्रेक में भी खेद रहित होकर दुर्द्धर तप करते है वह घोर तप ऋद्धि है ।
घोर पराक्रम ऋद्धि	जिस ऋद्धि के प्रभाव से मुनि गण सम्पूर्ण लोक के संहार एवं समुद्र के जल को सुखाने की सामर्थ्य रखते है वह घोर पराक्रम ऋद्धि है ।

च

चिकित्सा दोष	चिकित्सा शास्त्र के बल से ज्वर आदि व्याधियों को दूर करने का उपाय बताकर आहार ग्रहण करना ।
चूर्ण दोष	अंजन चूर्ण आदि प्रदानकर आहार ग्रहण करना ।
चेतना के पर्यायवाची शब्द (नाम)	चेतना, उपलब्धि, प्राप्ति-संवेदन, संचेतन, अनुभवन, अनुभूति अथवा आत्मोपलब्धि ।
चित्तिकर्म	जिससे तीर्थंकरत्व आदि पुण्य कर्म का संयम होता है उसे चित्तिकर्म कहते है ।
चतुर्दश पूर्वित्व	चौदह पूर्वो का ज्ञान कराने वाली बुद्धि (१४ पूर्व)
चतुर्विंशतिस्तव अंगबाह्य	इसमें चौबीस तीर्थंकरों के स्तवन के विधि विधान का निरूपण है ।
चैत्य	सर्वज्ञ देव की प्रतिमा को चैत्य कहते है ।
चतुर्विध संघ	मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इनको चतुर्विध संघ कहते है ।
चतुर्गति निगोद	सादि कालीन वनस्पति काय को चतुर्गति निगोद कहते है। या जिसने कभी त्रस पर्याय को प्राप्त कर लिया हो उसे चतुर्गति निगोद कहते है ।
चातुर्मासिक प्रतिक्रमण	कार्तिक मास के अंत में और फाल्गुन मास के अंत में चतुर्दशी अथवा पूर्णिमा को चातुर्मासिक प्रतिक्रसण किया जाता है ।
चतुष्क	चार – अर्थात द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव (चतुष्टय)
चक्षु दर्शनावरण कर्म	नेत्रों द्वारा होनेवाले सामान्य अवबोध दर्शन को रोकता है।
चिंतवन	ध्यान करना ।
चतुष्पद	चार पैर याने पशु-हाथी घोड़े आदि ।

चतुर्थ भक्त	एक उपवास ।
चतुर्मुख पूजा	चक्रवर्तियों द्वारा की जाने वाली पूजा ।
च्यावित भूत काय शरीर	जो ज्ञायक का भूत शरीर अकाल मृत्यु से नष्ट हो गया हो परंतु संन्यास विधि से रहित हो उसे च्यावित शरीर कहते है।
च्युतभूतकाय शरीर	केवल आयु के पूर्ण होने पर जो शरीर नष्ट हो जाय उसे च्युत शरीर कहते है । यह अकाल मृत्यु और संन्यास से रहित होता है ।
चिद्	ज्ञान ।
चौदह पूर्व	१४ विद्यास्थान ।
चिदात्मा	चैतन स्वरुप - जीव ।
चिदब्रह्म	चैतन्य स्वरुप आत्मा ।
चन्द्र प्रज्ञप्ति	इसमें चन्द्रमा की आयु, गति, वैभव आदि का वर्णन है ।
चिन् मात्र	अखण्ड चेतनारुप ।
चपक	राग-भाव ।
चौर्यानंदी रौद्रध्यान	चोरी करके, चोरी कराके जो प्रसन्न होता है वह चौर्यानंदी रौद्रध्यान है ।
चौबीस ठाणा	जिसमें मार्गणा आदि २४ स्थान होते है उसे चौबीस ठाणा कहते है जैसे गति से कुल पर्यंत ।
चर्या	नंगे पैरों से विहार करने से खेद - खिन्न न होना, चर्या है । गमन है।
चरणानुयोग	नीति सुभाषित-मुनि और गृहस्थ का जो निर्दोष आचरण उसकी उत्पति का, दिनप्रतिदिन वृद्धि का, धारण किये आचरण की रक्षा का कारण चरणानुयोग रूप सम्यग्ज्ञान ही है । जैसे इसके ग्रंथ मूलाचार, आचारसार, रत्न करण्ड श्रावकाचार, भगवती आराधना, स्वामी कार्तिकियानुप्रेक्षा, आत्मानुशासन, पद्मनंदि पंचविंशति, पुरुषार्थ सिद्धिउपाय, ज्ञानार्णव ।
चारित्र के नाम	संयम, चारित्र, आचरण, चरण, वृत्त, थिरवान।
चारित्र (सिद्धअनुयोगद्वार)	वर्तमान की दृष्टि से सिद्धजीव न तो चारित्री होते है और न अचारित्री ।
चित्रल	चितकबरा ।
चरित्र	एक पुरुष की मुख्यता से जो वर्णन होता है वह चरित्र कहलाता है। (प्रथमानुयोग)
चारित्राचार	पाँच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति रूप तेरह प्रकार के

	चारित्र का पालन करना चारित्राचार है ।
चारित्र मेहनीय कर्म	यह आत्मा के चारित्र गुण को विकृत कर देता है ।
चरित	जो एक पुरुष आश्रित कथा होती है वह चरित (चरित्र) है।
चारण क्रिया ऋद्धि	जल, जंघा, आकाश तंतु (धागा), पुष्प, पत्र, बीज, श्रेणी, (आकाश की प्रेरणा पंक्ति) और अग्नि की शिखा आदि के आलम्बन से आकाश में गमन करने की सामर्थ्य प्रदान करनेवाली ऋद्धि ।
चरण	यथार्थ से धर्म का आचरण करना और दूसरो को धर्म का आचरण कराना । (चारित्र)
चुरुलित दोष	एक ही स्थान में खड़े होकर हस्तांजलि को घुमाकर सबकी वंदना करना अथवा पंचम आदि स्वर से गा गा कर वंदना करना ।
चौर प्रयोग (स्तेन प्रयोग)	तरह तरह के उपाय बताकर चोरी में सहायक होना, चोरी की योजना बनाना, चोरों को प्रेरणा देना, तथा चोरों की प्रशंसा करना, दूसरों से चोरी करवाना तथा चोरी की अनुमोदना करना चौर प्रयोग है ।
चौरार्थ आदान	जान बुझकर चोरी का माल खरीदना उन्हे गिरवी रखना, चोरों से सम्बन्ध बनाये रखना, तस्करी का माल खरीदना चौरार्थ आदान है ।
चूलिका	विशेष व्याख्यान ।
चेष्टा	उपाय ।
चक्षु दर्शन	नेत्रेन्द्रिय द्वारा होनेवाला सामान्य प्रतिभास चक्षुदर्शन है ।
चक्षु इन्द्रिय निरोध	स्त्रियों के सुन्दर रुप या विकृत वेष आदि में राग-भाव और द्वेष भाव नहीं करना ।

छ

छद्म	ज्ञानावरण, दर्शनावरण ।
छन्दन	उपकरण आदि के ग्रहण करने में या वन्दना आदि की क्रिया में आचार्य के अनुकूल प्रवृत्ति करना ।
छेदोपस्थापना	सामायिक रूप यथार्थ स्वभाव का छेद हो जाने तथा उपयोग को अशुभ भावों में रोककर व्रत आदि शुभ भावों में स्थापित करना ही छेदोप स्थापना संयम का अर्थ है ।
छेदप्रायश्चित	चिर दीक्षित साधु के द्वारा दोष विशेष होने पर उसकी शुद्धि के लिये कुछ काल की दीक्षा छेद देना, छेद प्रायश्चित है ।

छद्मस्थ (सम्यक्त्वी)	आवरण ज्ञानावरण, दर्शनावरण में स्थित १२ वें गुणस्थान तक के जीव छद्मस्थ कहलाते है ।
छर्दि	(वमन अन्तराय) आहार करते हुवे वमन हो जाने पर ।
छेदोपस्थापना चारित्र	सामायिक का छेद होने पर फिर सामायिक में स्थिर होना।
छेदोपस्थापक	२८ मूल गुणों में भेद रूप से आचरण करना क्षेदोपस्थापक कहलाता है ।

ज

जनपद सत्य	मनुष्यों के व्यवहार में जो शब्द रूढ़ रहा है उसको जनपद सत्य कहते है ।
जरा (बुढ़ापा)	आयु कर्म के विपाक आदि कारणों से शरीर के शिथिल होने पर जरा (वृद्धावस्था) आती है ।
जिन चैत्य	जिनेन्द्र भगवान की मूर्ति ।
जाति क्षत्रिय	क्षत्रिय वर्ण में जन्म लेनेवाले जाति क्षत्रिय है ।
ज्योतिर्मय	ज्ञान प्रकाश मय ।
जुगुप्सा	घृणा (ग्लानि) ।
जिज्ञासु	सत् को समझने का इच्छुक ।
जंगम	द्वि इन्द्रिय आदि (त्रस)
जघन्य पात्र	जो सम्यग्दृष्टि हो वह जघन्य पात्र है ।
जघन्य अन्तरात्मा	जो जीव अविरत सम्यग्दृष्टि है वे जघन्य अन्तरात्मा है । (अर्थात चौथे गुणस्थान वर्ती जीव)
जाति	योनि अर्थात जीवों की उत्पत्ति स्थान को जाति कहते है ।
जाति स्मरण	अतीत के जन्मों की स्मृति ।
जातिनाम कर्म	जिस नाम कर्म के उदय से जीवों में एक विशिष्ट तरह का सादृश्य हो उसे जाति नाम कर्म कहते है ।
जिनागम का सार	अपने परिणामों में रागादि भावों का प्रगट न होने देना वही अहिंसा है । और उन्ही का प्रगट होना ही हिंसा है । यह जिनागम का सार है ।
जिन धर्म का स्तंभ	ज्ञान का अभ्यास और भाव प्रधान माना जाता है ।
जैन धर्म	जैन धर्म अनेकांत, स्याद्वाद सप्त-भंगी सिद्धांत को भी माननेवाला है ।
जिनधर्म	दशलक्षण, रत्नत्रय और सोलह कारण जिनधर्म है ।
जिन कल्पी साधु	शिष्य छोड़कर अकेले निर्भय विचरते है और महातपश्चरण करते है तथा कर्म के उदय से आई २२ परिषह सहते है । ये वनवासी

	नग्न तथा २८ मूलगुण के धारक होते है परिग्रह के त्यागी वैरागी होते है ।
जिन	सयोग केवली भगवान अर्थात जिसने काम, क्रोध मद मोह, राग द्वेषादि समस्त विकारों को जीत लिया है वही जिन कहलाता है ।
जैन	जैन वह है जिसने जीवन में अहिंसा, व्यवहार में अपरिग्रह, विचारो में अनेकान्त और वाणी में स्याद्वाद हो । जो पांचो इन्द्रियों और मन को वश में कर जीतने में लगा है वह जैन कहलाता है ।
जैन नीति	जिनेन्द्र देव की स्याद्वाद नीति अथवा निश्चय व्यवहार रूप नीति याने न्याय पद्धति अथवा निश्चय व्यवहार रूप नीति याने न्याय पद्धति अर्थात नय विवक्षा ।
जिन राज	तीर्थंकर ।
जिन मुद्रा का चिन्ह	मयूर पिच्छी ।
जन्म सिद्ध	जो जिस क्षेत्र में जन्मते है उसी क्षेत्र से उनके सिद्ध होने पर वे जन्म सिद्ध कहलाते है ।
जान्धव परामर्श अन्तराय	सिद्ध भक्ति करने के बाद साधु के हाथ से घुटने से नीचे के भाग का स्पर्श हो जाने पर ।
जानुपरिव्यतिक्रम अन्तराय	घुटने तक ऊँचे तथा मार्ग विरोध के रूप में तिरछे रूप से स्थापित लकड़ी ।
जन्तुवध अन्तराय	अपने ही सामने बिल्लीआदि के द्वारा चूहे आदि पंचेन्द्रिय प्राणियों का वध हो जाने पर ।
जिन संज्ञा	चौथे गुणस्थान से १२ वें गुणस्थान पर्यंत जिन संज्ञा है ।
जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति	इसमें जम्बू द्वीप का वर्णन है ।
जियतन	जीव और शरीर ।
जरायुज जन्म	जाल के समान मांस खुन से व्याप्त एक प्रकार की थैली से लिपटे हुवे जीव को जरायुज कहते है ।
जीव	जिसमें ज्ञान, दर्शन (चेतना) हो उसे जीव कहते है । जीव कर्ता है। वक्ता है, प्राणी है, भोक्ता है, पुद्गल है, वेद है, विष्णु है, स्वयंभू है, शरीरी है, मानव है, सक्ता है, जन्तु है, मानी है, मायावी है, योग साहित है, संकुट है, असंकुट है, क्षेत्रज्ञ है और अन्तरात्मा है ।
जीवकाण्ड	जीवस्थान – जीवट्ठाण इसमें अशुद्ध जीव के १४ गुण स्थान, १४ मार्गणा स्थान और १४ जीवसमास स्थान-जीव प्ररुपणा (२०) ।
जीवास्तिकाय	शुद्ध जीव सत् ।

जीव तत्व	मात्र ज्ञायक स्वभाव का नाम है । आत्मा का अनादि अनंत स्वभाव, जिसमें और तत्व नहीं है ।
जीव-द्रव्य	चैतन्य रूप है अनन्तगुण, अनन्त पर्याय और अनन्त शक्ति सहित है ।
जीव के विशेष गुण	ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यकचारित्र आदि ।
जीव समास	जहाँ पर जीव सम्यक् प्रकार से रहते है अर्थात पाये जाते है उन्हे जीव समास कहते है ।
जीविताशंसा	सल्लेखनाधारी को अधिक जीने की आकांशा नहीं करनी चाहिये।
जीव विचय धर्म ध्यान	जीव के स्वरुप का चिंतन ।
जीव के नामान्तर	आत्मा, सत्व, भूत, जंतु, प्राणी आदि । आचार्य कुंदकुंदने जीव का सर्वांगीण स्वरुप इस प्रकार बताया है । जीव चैतन्य स्वरुप है, वह जानने देखने रूप उपयोग वाला है, प्रभू है, कर्ता है, भोक्ता है, तथा वह मूर्तिक नहीं है फिर भी कर्म संयुक्त है ।
जीव का भाव	कर्मो के संयोग वियोग से होने वाली परिणति विशेष को भाव कहते है ।
जीवत्व	जीवत्व का अर्थ चैतन्य ।
जीव निकाय	जीवों का समूह ।
जल्ल औषधिऋद्धि	जिस ऋद्धि के प्रभाव से योगी के पसीने से ही सर्व रोग नष्ट हो जाते है वह जल्ल औषधि ऋद्धि है ।
जलगता चूलिका	इसमें जल को रोकने ओर बरसाने आदि के मंत्र तंत्र का वर्णन है ।
जीव बंध	राग और ज्ञान के बंध को जीव बंध या भाव बंध कहते है।

झ

झूठ के नाम	अयथार्थ, मिथ्या, वृथा, मृषा,असत्य, अलीक, मुधा, मोघ, वितथ, नि:फल, अनुचित, असत, अठीक, ये झूठ के नाम है ।

ट

टंकोत्कीर्ण	वैसे का वैसा ।

ढ

ढोंढाचार्य	जो पहिले शिष्यत्व न करके आचार्य होने की जल्दी करता है वह ढोंढाचार्य है । वह मदोन्मत्त हाथी के समान निरंकुश भ्रमण करता है ।

ण

णमोकार मंत्र प्राकृत में — णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए, सव्व साहूणं ।।

णमोकार मंत्र के अनेक नाम — णमोकार मंत्र, नमस्कार मंत्र, मंगल मंत्र, पंचपरमेष्ठी वाचक मंत्र, अनादिनिधन मंत्र, चौरासीलाख मंत्रों का राजा, तरण तारण मंत्र, महामंत्र, अपराजित मंत्र, मूलमंत्र, मंत्रराज, सर्वमान्य मंत्र, गुरु मंत्र, भाग्यमंत्र, महामंगलमंत्र, वीतराग मंत्र, विषय विषहरमंत्र, जिनमंत्र, केवलज्ञान मंत्र, मुक्ति मंत्र, मोक्ष मंत्र, पंचणमोकार महामंत्र ।

णमोकार मंत्र — इसके पद ५ (पांच), इसके अक्षर ३५, इसमें मात्रा ५८ ।
जिस मंत्र के द्वारा पंच परमेष्ठीयों को नमोस्कार किया जाता है उसे णमोकार मंत्र कहते है ।

णमोकार मंत्र को किसने लिपिबद्ध किया — श्री धरसेन आचार्य के शिष्यद्वय श्री भूतबली और पुष्पदंत ने लिपिबद्ध किया ।

णमोकार मंत्र को कौन से ग्रंथ में सर्व प्रथम मंगलाचरण के रूप में लिखा गया — षटखण्डा गम ग्रंथ जिसके रचयिता आचार्य भूतबली-पुष्पदंत थे ।

णमोकार किस भाषा में — प्राकृत भाषा में ।

णमोकार मंत्र संस्कृत में किसने लिखा — आचार्य श्री उमास्वामी ने ।

त

तर्क — व्याप्ति के ज्ञान को तर्क कहते है । एक के बिना एक न होवे वह व्याप्ति है ।

तर्जित दोष — अन्यों को तर्जित कर, डर दिखाकर वन्दना करना अथवा आचार्यादि के द्वारा अंगुलि आदि से तर्जित अनुशासित किये जाने पर "यदि वंदनादि नहीं करोगे तो संघ से निकाल दूंगा" ऐसी फटकार सुनकर वन्दना करना ।

तैजस वर्गणा — तैजस शरीर के रुप में परिणत होनेवाले पुद्‌गल तैजस वर्गणा है ।

तेज आहार — अंडे में रहनेवाले पक्षी आदि का माता आदि के द्वारा सेये जाने से तेज आहार होता है ।

तैजस समुद्घात — किसी पर अनुग्रह या निग्रह के लिये मूल शरीर को छोड़े बिना तैजस शरीर का आत्मा से बाहर निकलना तैजस समुद्घात कहलाता है ।

तैजस शरीर	स्थूल शरीरों में कांति, उष्मा, और प्रकाश उत्पन्न करनेवाला शरीर तैजस शरीर है ।
तत्	वीणा वगैरह वाद्यों के शब्द को तत् कहते है ।
तत्पर	स्थित ।
तत् भाव	परिणमन करती हुई वस्तु वहीं की वही है, दूसरी नहीं है, इसको तत्भाव कहते है ।
तत्-शब्द	वीणा वगैरह के शब्द को तत्-शब्द कहते है ।
तत्त्व	सारभूत पदार्थ । वस्तु के भाव या स्वभाव को तत्त्व कहते है।
तत्सेवी दोष	अपनी आलोचना ऐसे गुरू के पास करना, जो स्वयं उससे ग्रसित हो, वह तत्सेवी दोष है ।
तत्व रूपवती धारणा	मेरी आत्मा सर्व कर्मो से रहित व शरीर रहित सिद्ध के समान शुद्ध है उसमें तन्मय हो जावे ।
तथात्व	एक जीव परिणमन करके मनुष्य से देव हुआ, अब यह जीव वही है जो पहले था इसको तथात्व कहते है।
तीर्थ	आगम और उस पर आधारित चतुर्विद संघ ।
तीर्थ (सिध्द अनुयोग)	कोई तीर्थंकर के रूप में सिद्ध होते है और कोई अतीर्थंकर के रूप में सिद्ध होते है ।
तीर्थ क्षत्रिय	तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण आदि तीर्थ क्षत्रिय कहलाते है ।
तीर्थंकर	जो १०० इन्द्रो से पूजित है, पंचकल्याणकों से युक्त है तथा जो प्राणी मात्र से प्रेम करते है, उन्हे तीर्थंकर कहते है ।धर्मतीर्थ को चलानेवाला, आगम और चतुर्विद संघ का निर्माण करनेवाला ।
तीर्थंकर नामकर्म	तीर्थंकर नाम कर्म त्रिलोक पूज्य एवं धर्म तीर्थ का प्रवर्तक बनाता है ।
तथाकार	गुरु आदि द्वारा प्रतिपादिन सूत्रों का श्रवण कर, यह सत्य है ऐसा कहना ।
तथात्व और अन्यथात्व	यह वही है इसको तथात्व कहते है । यह वह नहीं है इसको अन्यथात्व कहते है ।
तदुभय	आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों एक साथ करना तदुभय है ।
तदुभयाचार	अर्थ समझते हुवे शुद्ध आचरण सहित पढ़ना ।
तदुभय शुद्धि	शब्द और अर्थ को शुद्धि पूर्वक पढ़ना ।
तद्भव मरण	आयु के पूर्ण होने पर होनेवाला मरण तद्भव मरण है ।
तदात्मक	सुखात्मक ।

तद भावाव्ययम्	वस्तु के भाव का नाश नहीं होता ।
तद्व्यक्तिरिक्त नो आगम द्रव्य कर्म	ज्ञानावरणादि प्रकृतिरूप परिण मता हुआ जो कार्मण वर्गणा रूप पुद्गल द्रव्य वह कर्म तद् व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य कर्म है ।
तदाहृतादान	चोरी का लाया हुआ माल जान बूझकर लेना व शंका से लेना ।
तद्गुण	भाव ।
तादात्म्य	तन्मय -तद्रूप ।
ताद्दश	जैसी है वैसी ।
तीनों योग	मन वचन और काय की क्रिया ।
तादृक	जिसके लिये उसके सिवाय दूसरी उपमा नहीं ।
तन्द्रा	आलस्य ।
तन्मोहरांग निरीक्षण त्याग	स्त्रियों के मनोहर अंगो को देखने का त्याग ।
तप	इच्छाओं को रोकना अर्थात अपनी शक्ति को नहीं छिपाकर मार्गा विरोधी काय क्लेश करना तप है । सामायिक और प्रतिक्रमण करना ।
तपाचार	अपनी शक्ति के अनुसार १२ प्रकार के तपों का अनुष्ठान करना तपाचार है ।
तपस्वी	जो सर्वोत भद्र आदि घोर तपश्चरण करते है उनको तपस्वी कहते है ।
तप्त तप ऋद्धि	जिस ऋद्धि के बल पर गृहीत आहार तप्त कड़ाही पर पड़े जलकण के समान क्षीण हो जाता है अर्थात मल-मूल रूप परिणमित नहीं होता, वह तप्ततप ऋद्धि है ।
तिर्यग व्यतिक्रम	अज्ञान अथवा प्रमादवश तिर्यग सीमा का उल्लंघन करना । आठ दिशाओंकी सीमा ।
त्याग	दूसरे जीवों को दया भाव करके ज्ञान आहारदि दान देने को त्याग कहते है ।
तिर्यग	तिरछी ।
तिर्यंच गति	जिस कर्म के उदय से यह जीव तिर्यंचाकार हो उसको तिर्यंच गति कहते है ।
तेरह विध चारित्र	५ महाव्रत, ५ समिति और गुप्ति ३का पालन करना १३ विध चारित्र है ।
तेरहवां व्रत	सल्लेखना ।
तार ध्वनि	जब सिरोदेश से जो ध्वनि गाई जाती है तब वह तार ध्वनि है ।
तिरश्री	पशुजाति की स्त्री ।
त्वरित	शीघ्र ।

तुष्टि	दान देने में हर्ष मनाना ।
तृष्णा	ये सुखदायक पदार्थ कभी भी मेरे से अलग न होवे ऐसी तीव्र अभिलाषा को तृष्णा कहते है ।
तृषा	प्यास ।

थ

थावर	(स्थावर) एक इन्द्रिय जीव ।

द

दंश करना	काटना ।
दिग्व्रत	दश दिशाओं में जाने आने की मर्यादा बांध लेना ।
दिगम्बर	दिग्‌नाम दिशा का, अम्बर नाम वस्त्र का, सो दसों दिशा के वस्त्र पहिने हो उनको दिगम्बर कहते है ।
दण्डक	जीव जिस कारण दण्ड भोगते है वह दण्डक कहलाता है।
दूत दोष	किसी सम्बन्धी के मौखिक या लिखित संदेश के पहुँचाने से संतुष्ट दाता द्वारा आहार ग्रहण करना ।
दुर्दर दोष	वन्दना के पाठ को इतनी जोर से बोलते हुये महाकलकल ध्वनि करना कि जिससे दूसरो की ध्वनि दब जाये ।
दीप्ततप ऋद्धि	जिस ऋद्धि के प्रभाव से बलिष्ट ऋषि के अनेक प्रकार के उपवासों के बाद भी शरीर की कांति सूर्य की किरणवत् बढती रहे वह दीप्त तप ऋद्धि है । दीप्ति के साथ बल भी बढ़ता है।
द्वीप सागर प्रज्ञप्ति	इसमें समस्त द्वीपो और सागरों का वर्णन है ।
दुःपक्वाहार	कम पका व अधिक पका व न पचने लायक आहार करना।
दैत्य	राक्षस ।
द्वितीयोपशम सम्यक्त्व	चतुर्थ से सप्तम गुण स्थानवर्ती क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि प्राप्त करते है ।
द्वादशांग का रहस्य	बारह भावनाओं का चिंतन ।
दीपिका	चिराग ।
दुर्धर	कठिन ।
दुर्नय	एकान्त पक्ष ।
दानान्तराय कर्म	जिस कर्म के उदय से दान देने की अनुकूल सामग्री और पात्र की उपस्थिति में भी दान देने की भावना न हो, वह दानान्तराय कर्म है।

दान	स्व-पर के अनुग्रह के लिये अपनी वस्तु का त्याग करना दान है ।
दुर्भगनाम कर्म	दुर्भग नाम कर्म गुण युक्त होने पर भी अन्य प्राणियों में अप्रीति उत्पन्न करानेवाला शरीर प्रदान करता है ।
दायक दोष	सूतक-पातक युक्त अशुद्ध दाता, नपुंसक, अतिबाल, अति-वृद्ध, रूग्ण, पांच माह से अधिक गर्भवती स्त्री तथा शास्त्रों में जिन्हे आहार दान देने का निषेध है, ऐसे व्यक्तियोंसे आहार ग्रहण करना ।
दायक	दान देनेवाला ।
दूर घ्राणत्व बुद्धि	घ्राण इंन्द्रिय के उत्कृष्ट विषय क्षेत्र के बाहर संख्यात योजन दूर के गंध को ग्रहण करने वाली बुद्धि (दूरीगंध) ।
दूर दर्शित्व बुद्धि	चक्षु इन्द्रिय के उत्कृष्ट विषय क्षेत्र से संख्यात योजन बाहर के रूप को ग्रहण करनेवाली बुद्धि (दूरावलोकन)
दूर स्पर्शनत्व बुद्धि	स्पर्शन इन्द्रिय के उत्कृष्ट विषय क्षेत्र से संख्यात योजन बाहर के स्पर्श को जान लेने वाली बुद्धि (दूरी स्पर्शन) ।
दूर स्वादित्व बुद्धि	जिव्हा इन्द्रिय के उत्कृष्ट विषय क्षेत्र से बाहर संख्यात योजन के रसो को दूर से ही जान लेने वाली बुद्धि । (दूरी रसन)
दूर श्रवणत्व बुद्धि	श्रोत्र इंन्द्रिय के उत्कृष्ट विषय क्षेत्र से संख्यात योजन बाहर के रूप को ग्रहण करनेवाली बुद्धि (दूरी श्रवण)
दारुण	सुदृढ़ ।
दुर्लभ	ज्ञान की प्राप्ति बड़े कष्ट से होती है अतः वह दुर्लभ है ।
दोलायित दोष	झुले पर बैठे हुवे के समान अर्थात हिलते हुवे वंदना करना।
द्रव्य जिन	जो आगे जिन होने वाला है वह द्रव्य जिन है ।
द्विपद	मनुष्य ।
द्रव्य का चतुष्टय	देश देशांश, गुण गुणांश को द्रव्य का चतुष्टय कहते है ।
द्रव्य का विशेष गुण	जो गुण जो उस एक द्रव्य में ही पाया जावे, अन्य द्रव्य में न पाया जावे ।
देव पूजा	श्री जिनेन्द्र की भक्ति करना ।
देवगति	जिस कर्म के उदय से यह जीव देव शरीराकार का हो उसे देवगति कहते है ।
द्रव्य सामायिक	सोना चांदी या मिट्टी आदि में राग द्वेष नहीं करना द्रव्य सामायिक है ।
द्रव्य पूजा	शरीर और वचन को पूजा में लगाना द्रव्य पूजा है ।
द्रव्य के अनेकनाम	तत्त्व, सत्त्व, सत्ता, सत्, अन्वय, वस्तु, अर्थ, पदार्थ, सामान्य, धर्मदिश, समवाय, समुदाय इत्यादि ।

द्रव्य बंध	कर्म पुद्गलों का आत्मा के साथ एकाकार हो जाना द्रव्य बंध है ।
द्रव्य वेद	स्त्री पुरुष आदि चिन्हो को द्रव्य वेद कहते है ।
द्रव्य तीर्थ	गंगादि आदि में स्नान करने से संताप (शरीर ताप) का नाश किंचित काल के लिये होता है वह द्रव्य तीर्थ है ।
द्रव्य स्तव	जिनेन्द्र भगवान के शरीर का वर्ण, ऊँचाई, आयु उनके माता-पिता आदि के वर्णन पूर्वक स्तुति करना द्रव्य स्तव है ।
द्रव्य प्रतिक्रमण	सावद्य द्रव्य के सेवन से परिणाम हटाना द्रव्य प्रतिक्रमण है ।
द्रव्यानुयोग	(तर्क और न्याय) (दृष्टि में द्रव्यानुयोग) जो द्रव्यानुयोग दीपक है वह जीव और अजीव के स्वरूप को तथा संयोग-वियोग की विशेषता से उत्पन्न शेष ५ तत्त्वों को पुण्य और पाप को कर्म के बंध के स्वरूप को तथा कर्मों से छुट जाने रूप मोक्ष के स्वरूप को जिस प्रकार से आत्मा में उद्योत हो जाय उस प्रकार विस्तार से दिखलाता है । जैसे इसके ग्रंथ समयसार । या द्रव्य के निरुपक अनुयोग को द्रव्यानुयोग कहते है ।
द्रव्याश्रव	ज्ञानावरणीय आठ कर्म कार्मण वर्गणा से जो कर्म आये उसे रूप परणति करना द्रव्याश्रव कहलाता है ।
द्रव्यार्थिक नय	द्रव्य अर्थात सामान्य को विषय बनाने वाला नय । जो नय द्रव्य की मुख्यता से पदार्थ का अनुभव करावे ।
द्रव्य लेश्या	शरीर के रंग को द्रव्य लेश्या कहते है ।
द्रव्य संवर	कर्मो का आगमन रूक जाना, द्रव्य संवर है ।
द्रव्य निर्जरा	कर्म परमाणुओं का आत्मा से झड़कर अलग हो जाना द्रव्य निर्जरा है ।
द्रव्य श्रुत	रत्नत्रय रूप धर्म, अर्हत आदि देव, गुरु उनका चैत्यालय अर्थात प्रतिमा, चित्रपट आदि और जिनागम की अक्षर रचना, पुस्तकादि वह द्रव्य श्रुत है ।
द्रव्यमोक्ष	जो कर्म अनादिकाल से आत्मा के साथ में बन्धन में है, उस कर्म का आत्मा के प्रदेश से अत्यंत अभाव होकर उसकी कर्म रूप अवस्था मिट जाने को द्रव्य मोक्ष कहते है ।
द्रव्य नमस्कार	वचन और काया से आंतरिक भाव प्रगट करना ।
द्रव्य पुण्य	शुभ परिणामोंके निमित्त से जो शुभ कार्यो का बंध होता है वह द्रव्य पुण्य है ।
द्रव्य पाप	पाप में प्रवृत्त करानेवाले मिथ्यात्वादि पाप कर्मो को द्रव्य पाप कहते है ।
द्रव्य कर्म	ज्ञानावरणादि रूप पुद्गल द्रव्य का पिंड द्रव्य कर्म है ।

द्रव्य	गुण समुदाय को द्रव्य कहते है । द्रव्य का अर्थ है वस्तु । अर्थात गुण और पर्याय मिलकर ही द्रव्य कहलाता है ।
द्रव्येन्द्रिय	शरीर नाम कर्म के उदय से बननेवाले शरीर के चिन्ह विशेष को द्रव्येन्द्रिय कहते है ।
द्रव्य निक्षेप	भूत और भावी अवस्था के कारण व्यक्ति या वस्तु की उसी अभिप्राय से पहिचान करना द्रव्य निक्षेप है ।
द्रव्यत्व गुण	द्रव्य का वह गुण जो परिवर्तनशील पर्यायों का आधार है ।
दिव्य ध्वनि	भगवान की वाणी ।
देव मूढ़ता	वर की चाह से रागी द्वेषी देवों की सेवा करना ।
देवर्द्धि दर्शन	अपने से अधिक ऋद्धि और वैभवशाली देवों का दर्शन ।
देव	अरिहंत और सिद्ध को देव कहते है । जो कर्मो का जीतने की इच्छा करता है वह देव है । जो परमसुख मे क्रीड़ा करता है वह देव है ।जो लोक और आलोक को जानता है वह देव है ।
देवर्षि	आकाशगामी मुनिराज देवर्षि कहलाते है । विषय रति से रहित होने के कारण लोकान्तिक देव देवर्षि कहलाते है ।
दिवा ब्रह्मचर्य/ रात्रिमुक्ति त्याग प्रतिमा	स्त्री मात्र के संसर्ग का त्याग करना दिया ब्रह्मचर्य प्रतिमा है । इस प्रतिमा का धारी रात्रि भोजन का त्यागी होता है इसलिये इसे रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा भी कहते है ।
दैवसिक प्रति क्रमण	दिवस सम्बन्धी दोषों के विशोधन हेतु सायंकाल में जो प्रतिक्रमण किया जाता है वह दैवसिक प्रतिक्रमण है ।
द्रव्यदृष्टि	निश्चय दृष्टि -अन्वय दृष्टि सामान्य दृष्टि इससे वस्तु अवस्थित है ।
देशना लाब्धि	सम्यक उपदेश का श्रवण और मनन देशनालब्धि है ।
दश वैकालिक अंगबाह्य	मुनि की आहार चर्या और भोज्य पदार्थो का निरुपक शास्त्र दश वैकालिक अंग बाह्य शास्त्र है ।
दर्शन चेतना	जो चेतना पदार्थो को सामान्य रूप से निराकार रूप प्रदर्शित करे ।
दर्शन के नाम	दर्शन, विलोकन, देखना, अवलोकन, दृगचाल, लखन, दृष्टि, निरीक्षण, जोवना, चित्तवन, चाहन, भाल, ये दर्शन के नाम है ।
दर्शन मार्गणा	जो देखता है या जिसके द्वारा देखा जाय या देखना मात्र दर्शन मार्गणा कहलाता है ।
दर्शन प्रतिमा	सम्यग्दर्शन की शुद्धि के साथ संसार, शरीर और भोगो से विरक्त होकर पंच परमेष्ठी के प्रति समर्पित रहना, दर्शन प्रतिमा कहलाती है।
दर्शनाचार	सम्यग्दर्शन के आठों अंगो का निर्दोष रूप से पालन करना

	दर्शनाचार है ।
देश जिन	आचार्य, उपाध्याय और साधु जिन्होने तीव्र कषाय, इन्द्रिय और मोह को जीता है वो देश जिन है ।
देश विरतगुणस्थान	जो जीव जिनेन्द्र देव में अद्वितीय श्रद्धा को रखता हुवा एक ही समय में त्रस जीवों की हिंसा से विरत और स्थावर जीवों की हिंसा से अविरत होता है उसे विरताविरत सम्यग्यदृष्टि कहते है और उसका स्थान देश विरत गुणस्थान कहलाता है ।
देशचारित्र	श्रावकों के व्रतों को देश चारित्र कहते है ।
देश घाति कर्म	ये आत्मगुणों का आंशिकरुप से घात करते है ।
दश पूर्वित्व	दश पूर्वो का पूर्ण ज्ञान करानेवाली बुद्धि (दशपूर्व) ।
दर्शन	पदार्थो के सामान्य प्रति भास को दर्शन कहते है ।
दर्शन विशुद्धि भावना	पच्चीस मल दोषों से रहित विशुद्ध सम्यग्दर्शन का पालन करना दर्शन विशुद्धि भावना है ।
दृष्ट वंदना दोष	आचार्यादि यदि देख रहे हो तो ठीक से वंदनादि करना अन्यथा स्वेच्छा से दिशावलोकन करते हुये वंदना करना ।
दर्शनोपयोग	पदार्थो के सामान्य प्रति भास को दर्शनोपयोग कहते है । इसे निराकार अथवा निर्विकल्प उपयोग भी कहते है ।
दर्शनावरण कर्म	आत्मा के दर्शन गुण को आवृत्त / आच्छादित करता है ।
दर्शन मोहनीय कर्म	यह आत्मा के दर्शन गुण - श्रद्धान को विकारग्रस्त बना देता है ।
दर्शन मोह क्षपक	दर्शन मोह की क्षपणा में प्रवृत्त सम्यग्दृष्टि ।
देशव्रत	दिग्व्रत में की गई मर्यादा में ग्राम, गली, घर, बगीचा, बाजार आदि में जाने के प्रमाण की मर्यादा कर लेना ।
देशव्रती	श्रावक के व्रतों का धारी सम्यग्दृष्टि पंचम गुणस्थान वर्ती जीव को देशव्रती कहते है ।
देशावधि अवधिज्ञान	भव या गुण (क्षयोपशम) के आश्रय से उत्पन्न होनेवाला अवधिज्ञान देशावधि अवधिज्ञान कहलाता है ।
देश	प्रदेशों के अभिन्न पिंड को देश कहते है ।
देशांश	भिन्न भिन्न प्रत्येक प्रदेश को देशांश कहते है ।
दृष्टि	श्रद्धा ।
दृष्ट दोष	लोगों के द्वारा दृष्ट दोषों की आलोचना करना और शेष दोषों को छिपा लेना दृष्ट दोष है ।
दृष्टि विष रस ऋद्धि	जिस ऋद्धि के प्रभाव से मुनि के देखने और सोचने मात्र से प्राणीयों

	का जीवन-मरण होता है वह दृष्टि विष रस ऋद्धि है ।
दृष्टिवाद	इसमें ३६३ मिथ्यामतों का निरूपण पूर्वक खण्डन का वर्णन है ।
दुःस्वर नामकर्म	दुःस्वर नामकर्म के उदय से कर्णकटु, कर्कश स्वर प्राप्त होता है ।
देह	औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण, इन पांच शरारों को देह कहते है ।
देहावगाहना	शरीर के छोटे बड़े भेदों को देहावगाहना कहते है ।
दुःश्रुति	चित्त को कलुषित करनेवाला अश्लील साहित्य पढ़ना, सुनना तथा अश्लील गीत, नाटक, टीव्ही. एवं सिनेमा देखना दुःश्रुति है । राग द्वेष बढ़ाने वाली कथाओं को पढ़ना, सुनाना ।
दीक्षा	दीक्षा वह कही गई है जहाँ गृह व परिग्रह का व मोह का त्याग हो, २२ परीषहों का सहना हो, कषायों का विजय हो व पापारम्भ से मुक्ति हो ।

ध

द्योतन	सम्यग्दर्शन - ज्ञान - चारित्र -तप इन चार आराधनाओं में लगे हुवे दोषों को दूर कर निर्मल करना वह द्योतन है ।
द्युत	जुआ ।
धर्म	वस्तु का स्वभाव । अर्थात सम्यग्दर्शन , सम्यग्ज्ञान , सम्यग्चारित्र मोक्षमार्ग - धर्म-अतीन्द्रिय आनन्द।
धर्म कथा	प्रथमानुयोगादि शास्त्रों को धर्म कथा कहते है ।
धृति	धैर्य ।
धरित्री	पृथ्वी ।
ध्रुवबंध	जिसका निरंतर बंध हुआ करे जिसका आदि तथा अन्त न हो ।
धर्मोपदेश	धर्म का उपदेश करना, सुनना या मनन करना धर्मोपदेश है ।
धर्मध्यान	पवित्र विचारों में मन का स्थिर होना धर्म ध्यान है ।
धर्म द्रव्य	यह एक स्वतंत्र द्रव्य है जो गतिशील जीव और पुद्गल के गमन में सहकारी है । धर्म द्रव्य की मान्यता अन्य दर्शनों में नहीं है, आधुनिक विज्ञान इसे ईथर के रूप में स्वीकार करता है ।
धूम्र दोष	अरूचिकर पदार्थ मिलने पर उसका मलिन मन से ग्लानिपूर्वक ग्रहण ।
ध्यान	सब विकल्पो को छोडकर अपने चित्त को एक लक्ष में स्थिर करना।
धारणा मतिज्ञान	अवाय (निर्णय) द्वारा निश्चित विषय को कालान्तर में विस्मृत न होने देने की योग्यता उत्पन्न कर लेना धारणा मतिज्ञान है।

धर्म भावना — इसमें तो बार बार विचार की प्रमुखता है किंतु धर्म में तो कर्तव्य का पालन की प्रधानता है ।

ध्रुव — नित्य - जैसा का तैसा निश्चल ज्ञान होना अथवा पर्वत आदि ध्रुव पदार्थो का अवग्रह आदि होना ।

ध्रुव धर्म — अविनाशी स्वभाव ।

धैवत स्वर — तालु देश में स्थित स्वर को धैवत स्वर कहते है ।

ध्रौव्य — अविचल अर्थात स्थायित्व होना इसलिये यह गुण है ।

धात्री — जो दुध पिलाती है अथवा पालन पोषण करती है वह धात्री है ।

धात्री दोष — धाय के समान बालको को भूषित करना, खिलाना, पिलाना आदि जिससे दातार प्रसन्न होकर अच्छा आहार देवे, यह मुनि के लिये धात्री दोष है ।

धिषणा — बुद्धि ।

ध्वंस — व्यय ।

ध्रुव के नामान्तर — ध्रुव, ध्रौव्य, स्थिति, नित्य अवस्थित ।

न

नो इन्द्रिय — मन (दूसरा नाम)

नो आगम — आगम से भिन्न पदार्थ को नो आगम कहते है ।

नो कर्म — चलता फिरता शरीर (देह इन्द्रिय-विषय) अर्थात औदारिक, वैक्रियक, आहारक शरीर और ६ पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल।

नो कर्म वर्गणा — शरीर और पर्याप्तियों के योग्य पुद्गलो को नो कर्म वर्गणा कहते है ।

नो कर्म आहार — प्रति समय नो कर्म पुदगलो का ग्रहण ।

नोकषाय — अकषाय (ईषत कषाय) अर्थात हास्य, रति, अरति, शोक इत्यादि।

निकृष्ट — हलका ।

निकांशित अंग — धर्म करते हुवे संसार के सुख की इच्छा नहीं रखना ।

निकाचित — कर्म बंधन की प्रगाढ़ अवस्था निकाचित है ।

निकृति माया — धन के विषय में फंसाने का चातुर्य को निकृतिमाया कहते है।

निखंडित प्रत्याख्यान — पाक्षिक आदि में अवश्य करने योग्य उपवासादि करना निखंडित प्रत्याख्यान है ।

निगड़ दोष — अपने दोनों पैरो को बेड़ी से जकडे हुवे की तरह पैरों में बहुत अन्तराल करके खड़े होना निगड़ दोष है ।

निगोदिया जीव — ये बहुत से जीव एक साथ ही खाते है, एक साथ ही श्वास लेते है,

	एक साथ ही मरते है और एक साथ ही जीते है । इन्हे ही निगोदिया जीव कहते है ।
निर्ग्रंथ मुनि	अन्तर मुहूर्त के अनन्तर केवलज्ञान प्राप्त करनेवाले मोह विजेता मुनि निर्ग्रंथ कहलाते है ।
निर्ग्रंथ	रागद्वेष, छलकपट आदि की गांठ से रहित बाह्य और आंतरिक परिग्रह से मुक्त दिगम्बर साधु निर्ग्रंथ कहलाते है। अर्थात परिग्रह रहित ।
निर्गत	निकल चुके ।
नैगम	संकल्प मात्र से पदार्थ के ग्रहण करने जानने को नैगम कहते है ।
नैगम नय	संकल्प मात्र से पदार्थ को जाननेवाला नय नैगम नय है ।
निगोद	जहाँ पर एक शरीर के अनेक मालिक हो ।
निगोदजीव	एक ही शरीर में अनन्त जीवों के समूह रूप से रहने वाले जीव निगोद जीव कहलाते है ।
नागेन्द्र पर्वत	अन्तिम स्वयं भूरमण द्वीप स्थित एक पर्वत ।
नीचगोत्र	जिसमें लोक निंदित आचरण की परम्परा है उसे नीच गोत्र कहते है ।
निजात्मा	शुद्धात्मानुभव ।
निर्जरा भावना	आत्मा के कर्म किस तरह छुटेगा ऐसा चिंतवन करना।
निर्जुगुप्सा	ग्लानि न करना ।
निर्जरा	कर्मों के आंशिक रुप से झड़ने को निर्जरा कहते है ।
नित्य	अनादि - अनादि अनन्त ।
नित्यपूजा	अष्ट द्रव्यों द्वारा जिन मंदिर में प्रतिदिन की जानेवाली पूजा।
नित्य विभु	सर्वव्यापक ।
नित्य निगोद	जिसने कभी भी निगोद के अलावा दूसरी पर्याय नहीं पाई है उसे नित्य निगोद कहते है । अर्थात अनादि कालीन साधारण वनस्पति कार्य को नित्य निगोद कहते है ।
निर्तेदिनि	पुण्य का फल ।
नित्यमरण	प्रति समय आयु आदि प्राणों का क्षीण होते रहना नित्य मरण है इसे अवीचि मरण भी कहते है ।
निदान	भावी भोगों की आकांक्षा जन्य आतुरता, अर्थात सल्लेखानाधारी को इस साधना के प्रभाव से आगामी जन्म में विशेष भोगोपभोग की सामग्री प्राप्त होने का विचार निदान है ।
निदान शल्य	भावी लोगों की आकांक्षा से व्रता चरण / तपश्चरण करना, उसमें

	ही दत्त चित्त रहना निदान शल्य है ।
निद्राकर्म	हल्की निंद को निद्रा कहते है ।
निद्रानिद्राकर्म	इसके उदय से ऐसी नींद आती है, जिससे प्राणी बडी मुश्किल से जाग पाता है ।
निंदा	अपने आपको भूल करने वाला मानना ।
निधान	४ आराधना की प्राप्ति एवं पूर्णता का वर्णन होनेसे निधान कहा जाता है अर्थात खजाना ।
निधति	कर्म की वह अवस्था निधति है जिसमें कर्म न तो अवान्तर भेदों में संक्रमित या रूपान्तरित हो सकते है और न ही असमय में अपना फल प्रदान कर सकते है ।
निर्पेक्षपना	निरंकुश ।
निबिड	सघन ।
निर्पेक्ष के नामांतर	निरपेक्ष, निरंकुश, स्वतंत्र, सर्वथा, भिन्न भिन्न प्रदेश ।
नपुसंक वेद	जिससे स्त्री तथा पुरुष में रमण करने की इच्छा आदि मिश्रित भाव हो उसे नपुंसक वेद कहते है ।
नाभिअधोगमन अन्तराय	नाभि से नीचे झुक कर जाने पर ।
नाम कर्म	अच्छे बुरे शरीर की संरचना करता है ।
नाम निक्षेप	किसी व्यक्ति या वस्तु का इच्छानुसार नामकरण करना नाम निक्षेप है ।
नाम प्रतिक्रमण	प्रतिक्रमण दण्डक के शब्दों का उच्चारण करना नाम प्रतिक्रमण है ।
नाममात्र	संक्षिप्त ।
नाम स्तव	भिन्न भिन्न १००८ आदि नामों से स्तुति करना नाम स्तव है।
नाम सत्य	केवल व्यवहार के लिये जो किसी का संज्ञा कर्म करना इसको नाम सत्य कहते है ।
नाम सामायिक	वस्तु के शुभ अशुभ नाम सुनकर राग द्वेष नहीं करना नाम सामायिक है ।
निमित्त	जो पदार्थ स्वयं कार्यरुप न परिणमें किंतु उत्पत्ति में सहायक हो ।
निमित्त - नैमेत्तिक सम्बन्ध के नाम	निमित्त नैमेत्तिक, अविनाभाव, कारण कार्य हेतु, हेतुमत, साध्य साधक, बंध्य-बंधक, एक दूसरे के उपकारक वस्तु स्वभाव ।
निमित्त कारण	जो स्वयं तो कार्यरूप परिणमित न हों, परन्तु कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप जिस पर आ सके वह निमित्त कारण है ।
निमित्तमात्र के नाम	निमित्त मात्र, कर्ता, असर, प्रभाव, बलाधान, प्रेरक, सहाय्यक, सहाय ।

निमित्त दोष	अष्टांग निमित्त बतलाने से संतुष्ट दाता द्वारा प्रदत्त आहार ग्रहण करना ।
निर्माण नामकर्म	शरीर के अंगोपांग की समुचित रूप से रचना करनेवला कर्म निर्माण कर्म है ।
निर्मूलन	छेदन, निर्लूरण, त्रोटन, उत्पाटन, निर्मूलन ये सब एकार्थ वाची है।
नयविद	नयवेता ।
नियत	अनन्त ज्ञानादि रूप ।
निर्यापकाचार्य	सल्लेखना के लिये योग्य गुरु ।
नय	वस्तु के एक देश का ज्ञाता । अर्थात अनन्त धर्मात्मक वस्तु के विवक्षित धर्म को मुख्य और अन्य धर्मो को गौण करनेवाले विचार को नय कहते है ।
नियम	जो काल की मर्यादा सहित है ।
नियति	निश्चित समय पर किसी काम का होना ।
न्यग्रोध परिमंडल संस्थान नाम कर्म	न्यग्रोध अर्थात वट के वृक्ष की तरह नाभि से ऊपर की ओर मोटे और नीचे की ओर पतले शरीर का आकार बनानेवाले कर्म को न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान नाम कर्म कहते है ।
न्यासापहार	दूसरो की घरोहर को हड़प लेना न्यासापहार है ।
निरागाण	वीतराग पुरुषों के ।
नरक गति	जिस कर्म के उदय से यह जीव नारकी के आकार हो उसको नरक गति कहते है ।
निरंश	जिसका दूसरा अंश न हो सके - अविभागी ।
निरतिशय पुण्य	मिथ्या दृष्टि का पुण्य निरतिशय पुण्य है । यह बंध का कारण होने से संसार का हेतु है ।
निरहंकारित्व	निरभिमानता ।
निरुपाधि	क्षायिक ज्ञान जो बंध का नाश होने से अबद्ध है उसे निरुपाधि कहते हे ।
निरंकुश	बिना रोक टोक ।
निरुपघात	उपघात रहित (स्वभाव से किसी के द्वारा घात नहीं किया जाता)।
निरन्तर सिद्ध	किसी एक के सिद्ध होने के तत्काल बाद जब कोई दूसरा सिद्ध होता है उसे निरन्तर सिद्ध कहते है ।
निरन्तर मार्गणा	जिनमें अन्तर विच्छेद नहीं पड़ता उनको निरन्तर मार्गणा कहते है ।
नाराचसंहनन	हड्डी के दोनों ओर कीले हो ।
निरगल	स्वच्छंदी ।

नर	मनुष्य ।
निरामय	रोग रहित ।
निरुक्ति	जिस धातु और प्रत्यय द्वारा जिस अर्थ में जो शब्द निष्पन्न हुआ है उसके उसही प्रकार से दिखाने को निरुक्ति कहते है ।
निराकार उपयोग	इन्द्रिय मन और अवधि के द्वारा अन्तर्मुहूर्त काल तक पदार्थों का जो सामान्य रूप से ग्रहण होता है उसको निराकार उपयोग कहते है ।
निलय	श्रेणीयाँ ।
निर्विकल्प	अखण्ड - शुद्ध भावरूप - भेद रहित - वीतरागता ।
निर्वेद	भोगों में अनाशक्ति।
नवनीत	मक्खन ।
निर्वेग	विरक्ति ।
निर्वाण	पुद्गल शरीर को छोड़ना, आत्मा का उर्ध्वगमन होना, मोक्ष में विराजमान होना ।
निवृत्ति अपर्याप्त	जिनकी पर्याप्तियाँ अधूरी है किंतु अन्त मुहूर्त में अवश्य पूरी होने वाली है वे निवृत्ति अपर्याप्त है ।
निर्विचिकित्साअंग	मुनिराज के मैले शरीर को देखकर ग्लानि नहीं करना ।
निर्वेदिनी कथा	शरीर, भोग और जन्म परम्परा में विरक्ति उत्पन्न करनेवाली कथा को निर्वेदिनी कथा ऐसा नाम है ।
निर्वर्त्यकर्म	कर्ता के द्वारा जो पहिले न हो ऐसा नवीन कुछ उत्पन्न किया जाये सो कर्ता का निर्वर्त्य कर्म है (जैसे घट बनाना)
निवृत्य पर्याप्त	जीव पर्याप्ति को ग्रहण करते हुवे जब तक मन पर्याप्ति को समाप्त नहीं कर लेता तब तक निवृत्य पर्याप्त कहा जाता है ।
निर्वाह	चारों आराधनाओं को लाभ, ख्याति, पूजा की अपेक्षा रहित निःस्पृह होकर निराकुलता से उसे धारण करना वह निर्वाह है ।
निवृत्तीवाक्	जिससे व्यापार में ठगने को प्रोत्साहन मिले वह निवृत्तिवाक् है ।
निवृत्ति	राग, द्वेष का न होना निवृत्ति है । ये बाहरी पदार्थों के सम्बन्ध से होते है, उनका त्याग करना योग्य है ।
निश्चय	द्रव्यार्थिक नय अभेद को, अभेद में, मोक्ष मार्ग, वीतरागता, संवर निर्जरा है ।
निश्चय सम्यग्दर्शन	पर द्रव्य देह आदि पदार्थो में अरूचि और शुद्ध आत्मा के स्वरूप का श्रद्धान करना ।
निश्चय सम्यग्ज्ञान	शुद्ध आत्म स्वरूप का ज्ञान करना । अर्थात आत्मज्ञान ही वास्तव

	में सम्यग्ज्ञान है ।
निश्चय सम्यग्चारित्र	अनन्त चतुष्टय रूप आत्मा में लीन होना । आत्मस्थिरता वास्तव में सम्यग्चारित्र है । निवृत्ति मूलक है - समस्त राग द्वेषादि वैभाविक भावों से रहित होकर परम साम्य भाव में अवस्थिति इसे समता, वीत रागता या माध्यस्थता भी कहते है ।
निश्चय ध्येय का अर्थ	आत्मा, आत्मा को, आत्मा में, आत्मा के द्वारा उस आत्मा को एक क्षण धारण करता हुवा स्वयं हो जाता है । श्रीपूज्य पाद स्वामी।
निश्चय का साधन	स्वाश्रय है ।
निश्चय दृष्टि से	शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से - भेद दृष्टि से ।
निश्चय काल	काल द्रव्य की भूमिका परिणमनगत में आलम्बन अनिवार्य है उसे वर्तना कहते है । इसे ही निश्चय काल कहते है ।
निश्चय नय	वस्तु के स्वाश्रित और पर निरपेक्ष स्वरूप का कथन करनेवाला नय निश्चय नय है । इसे मुख्य कथन कहते है ।
निश्चय मोक्षमार्ग	निज शुद्धात्मा का श्रद्धान, ज्ञान और उसमें ही रमणरूप चारित्र की एकता को निश्चय मोक्षमार्ग कहते है । यही शुद्धात्मानुभूति या शुद्धोपयोग है । यह अभेद रत्नत्रय है ।
निशंकित अंग	जिनके वचनों में शंका नहीं करना ।
निसर्गज सम्यग्दर्शन	परोपदेश के बिना उत्पन्न होने वाला सम्यग्दर्शन निसर्गज सम्यग्दर्शन है। अर्थात जो ज्ञान पूर्व भव के संस्कार से अपने आप उत्पन्न होता है । वह निसर्गज सम्यग्दर्शन है ।
निसर्ग सम्यक्त्व	जो पर के उपदेश बिना सम्यक्त्व प्राप्त होने के समय तत्व बोध होता है वह निसर्ग सम्यक्त्व है ।
नैसर्गिक मिथ्यादर्शन	जो पर के उपदेश बिना ही मिथ्यात्व कर्म के उदय के वशीभूत जीव अजीव आदि तत्वों का अश्रद्धान प्रगट होता है वह नैसर्गिक है।
निःसंग	परिग्रह के ममत्व रहित ।
निःसृत	पूर्णतः अभिव्यक्त वस्तु का अवग्रह आदि होना ।
निःसार	व्यर्थ ।
निस्तरण	परिषह उपसर्ग से चलायमान नहीं होना और जीवन के अन्त तक उन ४ आराधनाओं मे स्थिर रहना अर्थात मरण होने पर परभव में उनको साथ में ले जाना वह निस्तरण है।
नास्ति	नहीं है ।
निषाद स्वर	सर्व शरीर में स्थित शरीर को निषाद स्वर कहते है (हाथी का स्वर

	निषाद)
निष्पन्न योगी	शुद्धात्म भावना को प्रारम्भ करनेवाले पुरुष सूक्ष्म निर्विकल्प शुद्धावस्था में निष्पन्न योगी कहे जाते है ।
निष्ठीवन अंतराय	खांसी आदि के बिना स्वयं कफ, थूंक आदि फेकने पर ।
निषिद्धिका गमन प्रतिक्रमण	निषिद्धिका (जहाँ गुरुओं की समाधि हुई है या तीर्थकरों की कल्याण भूमि) के लिये गमन सम्बन्धी प्रतिक्रमण निषिद्धिका गमन प्रतिक्रमण है (ऐर्यापथिक में)
निषधा परिषह जय	जिस आसन में बैठे है उस आसन से विचलित न होना निषधा परिषह जय है ।
निषेव्य	सेवन करने योग्य ।
निषिधिका अंग बाह्य	शरीर, संहनन, बल आदि के अनुसार स्थूल-सूक्ष्म दोषों के प्रायश्चित निरुपक शास्त्र ।
निषिधिका	जिन मन्दिर में प्रवेश करते समय निःसही बोलते हुये वहाँ के स्वामी से आज्ञा लेना अथवा पापक्रिया से मन को हटाना निषिधिका है ।
निष्कांक्ष	निर्वांच्छक ।
निष्ठित	परिपक्व ।
निष्पाप	उज्ज्वल ।
निष्ठिवन दोष	थूकना, श्लेष्मा आदि निकालना निष्ठिवन कायोत्सर्ग दोष है ।
नष्ट	संख्या के द्वारा भेद के निकालने को नष्ट कहते है ।
निक्षेप	युक्तियों से निर्विवाद होते हुये भी कार्यवश नामादिमें पदार्थ की स्थापना निक्षेप है । गुणों के आक्षेप को निक्षेप कहते है । निक्षेप न नय है, न प्रमाण है और न उसका अंश है ।
निक्षिप्त अशन दोष	सचित्त भूमि, जल, अग्नि, वनस्पति अथवा त्रस जीवों पर रखी आहार सामग्री ग्रहण करना ।
निहचे	निश्चय नय से ।
निह्नव	एक आचार्य के पास अध्ययन करके मेरा गुरु तो अन्य है। ऐसा कहना अपलाप है । अपलाप करना निह्नव है ।

प

पाकर	अंजीर फल (ऊमर) ।
प्रक्रिया	रीति ।
प्राकृत	स्वभाव ।

प्राकाम्य	जल के समान पृथ्वी और पृथ्वी के समान जल पर गमन करने की सामर्थ्य ।
प्राकाम्य विक्रिया ऋद्धि	जल के समान पृथ्वी पर उन्मज्जन- निमज्जन करने की और पृथ्वी के समान जल पर गमन करने की सामर्थ्य ।
प्रकृतिबंध	कर्म बंध के समय बंधनेवाले कर्म परमाणुओं में बंधन का स्वभाव निर्धारण होना प्रकृति बंध है ।
पंकज	कमल ।
प्रकृति शील	कारण के बिना वस्तु का जो स्वभाव होता है उसको प्रकृतिशील अथवा स्वभाव कहते है ।
प्रकृति	स्वभाव ।
प्रकारकत्व	जो समाधि मरण कराने में या उसकी वैयावृत्य करने में कुशल है उन्हे परिचारी अथवा प्रकारी कहते है गुण प्रकारकत्व कहलाता है ।
प्रागभाव	वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में जो अभाव है उसे प्रागभाव कहते है ।
प्रांगण	चौक ।
पंचमगति	मोक्षमार्ग ।
प्रचला कर्म	इसके उदय से जीव खड़े खड़े या बैठे बैठे ही सो जाया करता है।
प्रचला प्रचला कर्म	इसके उदय से नींद में मुख से लार बहने लगती है तथा हाथ पैर आदि चलायमान हो जाते है ।
पंचाग्नि	पंचाचार ।
पंचकल्याणक	प्राण प्रतिष्ठा ।
प्रच्छन्न दोष	किसी बहाने से गुरु से यह पूछकर ऐसा दोष करने पर क्या प्रायश्चित होता है, स्वतः प्रायश्चित कर लेना प्रच्छन्न दोष है।
पृच्छना स्वाध्याय तप	संशय के निवारण के लिये तथा अर्थ के निश्चय के लिये ज्ञानीजनों से प्रश्न करना पृच्छना स्वाध्याय तप है ।
पंच लध्वक्षर	अ, इ, उ, ऋ, लृ ।
पंचमुष्ठी	शरीर के पांच अंग ।
पंचम स्वर	मुख देश में स्थित स्वर को पंचम स्वर कहते है । वसंत ऋतु में कोयल पंचम स्वर में कूजती है ।
पंचास्तिकाय	जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश- इन पांचो द्रव्यो को पंचास्तिकाय कहते है ।
पूजा के पर्यायवाची नाम	याग, यज्ञ, क्रतु, पूजा सपर्या, इज्या, अध्वर, मख और मह ये सब पूजा के तथा पूजा विधि के नाम (शब्द) है ।

पूजन	देव, शास्त्र और गुरु के गुणानुवाद को पूजन कहते है ।
पंजिका	वृत्तिसूत्रो के विषम पदों को स्पष्ट करने वाले विवरण को पंजिका कहते है ।
पिंड पतन अंतराय	आहार के समय साधु के हाथ से ग्रास गिर जाने पर ।
पीड़ा चिंतन आर्तध्यान	वेदना जन्य आतुरता, छटपटाहट ।
पिंडस्थ ध्यान	शरीर स्थित आत्मा का चिंतन करना पिंडस्थ (संस्थान विचय) धर्मध्यान है ।
पंडित	जो सत् और अस्त का या स्व-पर का विवेकी है ।
पुण्डरीक अंगबाह्य	देवों में उत्पन्न कराने वाले पुण्य का प्ररूपक शास्त्र ।
पुण्य के नाम	पुण्य, सुकृत, उर्ध्व वदन, अकररोग, शुभ कर्म, भाग्य, सुखदायक, संसार फल, बहिर्मुख, धर्म ये पुण्य के नाम है ।
पुण्य	जो आत्मा को पवित्र करे उसे पुण्य कहते है ।
पुण्यानुबंधी पुण्य	भोगाकांक्षा और निदान से रहित मोक्ष की अभिलाषा से किया जाने वाला शुभ कर्मानुष्ठान पुण्यानुबंधी पुण्य कहलाता है ।
पूर्णज्ञान का पिंड	(पांच द्रव्य-काल छोड़कर) और ९ तत्व (पदार्थ) ।
प्राण	जिसके संयोग से यह जीव, जीवन अवस्था प्राप्त होता है और वियोग से मरण अवस्था को प्राप्त होता है । अर्थात आत्मिकशक्ति (जीवनीशक्ति) ।
प्राणिजन्तु वधअन्तराय	आहार करते समय साधु के हाथ मे आकर किसी जंतु के मर जाने पर ।
प्रणिधि माया	हीनाधिक कीमत की सदृश वस्तुएं आपस में मिलाना, तोल और माप कम ज्यादा रखकर लेन देन करना, सच्चे और झूठे पदार्थ आपस में मिलाना यह सब प्रणिधिमाया है ।
प्राणावाय-पूर्व	इसमें अष्टांग वैद्य-विद्या, गरुड-विद्या और मंत्र तंत्र आदि का वर्णन है ।
प्रणमन दोष	कायोत्सर्ग में गर्दन अधिक नीचे झुकाना प्रणमन दोष है ।
प्रत्याख्यान	भविष्य और वर्तमान के दोषों का निराकरण करना प्रत्याख्यान है ।
प्रत्याख्यान कषाय	जो आत्मा के सकल चारित्र का घात करता है । इससे मुनिव्रत पालन के भाव नहीं होते है । यह चतुष्टयी संयम की घातक है ।
प्रत्याख्यान पूर्व	इसमें व्रत, नियम, प्रतिक्रमण, प्रतिलेखन, कल्प, उपसर्ग आचार, आराधना, विशुद्धि आदि का उपक्रम व मुनियों के आचारण का कारण तथा परिमित- अपरिमित द्रव्य के प्रत्याख्यान का वर्णन है ।
प्रत्याख्यान आवश्यक	आगामी आश्रव का निरोध ।

प्रत्याख्यान सेवन अंतराय	त्यागी हुई वस्तु का सेवन हो जाने पर ।
प्रत्याख्यानी भाषा	इसको छोड़ता हूँ, इस तरह के छोड़ने वाले वाक्योंको प्रत्याख्यानी भाषा कहते है ।
प्रतिक्रमण	मेरे अपराध मिथ्या होवे ऐसा गुरु आदि के पास निवेदन करना । पंचमकाल में प्रतिक्रमण को ही परमागम में धर्म कहा है ।
प्रतिक्रणण अंगबाह्य	प्रतिक्रमण का विधान बताने वाला शास्त्र ।
प्रतिमा	चारित्र गुण का प्रगट होना, परिणामों का योगों से विरक्त होना और प्रतिज्ञा का उदय होना, इसको प्रतिमा कहते है।
प्रतिमा शब्द के विभिन्न अर्थ	अनुकृति, प्रतिबिंब, प्रतिमान, प्रतियातना, प्रतिच्छाया, प्रतिकृति, प्रतिनिधि, प्रतिच्छंद, प्रतिकाय, प्रतिरूप और चैत्य ।
प्रत्येक वनस्पति	जिस वनस्पति का मालिक एक ही होता है उसे प्रत्येक वनस्पति कहते है । अर्थात एक शरीर में एक एकजीव ही होता है ।
प्रत्येक बुद्धि	गुरु के उपदेश के बिना ही संयम तप में प्रवृत्त करानेवाली बुद्धि ।
प्रत्यभिज्ञान	पूर्व वार्ता का स्मरण कर प्रत्यक्ष पदार्थ के साथ जोड़कर निश्चय करने को प्रत्यभिज्ञान कहते है ।
प्रत्येक शरीर नामकर्म	जिस कर्म के उदय से एक शरीर का एक ही जीव स्वामी हो, वह प्रत्येक शरीर नाम कर्म है ।
प्रत्येक बुद्ध	(सिद्धअनुयोगद्वार) सिद्ध होते है वे प्रत्येक बुद्ध या स्वयं बुद्ध कहलाते है ।
प्रतिबुद्ध	ज्ञानी ।
प्रतिवासुदेव	प्रतिनारायण ।
प्रतिषेध्य	निषेध करने योग्य ।
प्रातिहार्य	तीर्थंकरो के महिमा बोधक चिन्हों को प्रातिहार्य कहते है । विशेष शोभा की वस्तुओं को प्रातिहार्य कहते है ।
प्रतिग्रह	पड़गाहन (मुनि के लिये) ।
प्रतिरूपक व्यवहार	(सदृश्य सन्मिश्र) मिलावट करना, अधिक मूल्य की वस्तु में अल्प मूल्य की वस्तु मिलाकर बेचना, शुद्ध वस्तु में अशुद्ध वस्तु मिलाना प्रतिरूपक व्यवहार है ।
प्रतिष्ठापन समिति	भलीभाँति देखकर शुद्ध और निर्जन्तुक स्थान पर अपने मल मूत्रों का त्याग करना प्रतिष्ठापन समिति है ।
प्रतिसेवना कुशीलमुनि	मूलगुण और उत्तर गुणों का पालन करते हुवे कदाचित उत्तरगुणों में दोष लगानेवाले मुनि प्रतिसेवना कुशील मुनि कहलाते है ।

प्रतिपृच्छा	किसी बड़े कार्य को प्रारम्भ करते समय गुरु आदि से बार बार पूछना ।
प्रतिपाती अवधिज्ञान	उत्पन्न होकर छूट जानेवाला अवधिज्ञान ।
प्रतिजीवीगुण	वस्तु के अभाव रूप धर्म को प्रतिजीवी गुण कहते है ।
प्रतिकुंचन माया	आलोचना करते समय अपने दोष छिपाना यह प्रतिकुंचन माया है।
प्रतिषेधक	निषेध करनेवाला ।
प्रतिलेखन	मयूर के पंखों की पिच्छिका को प्रतिलेखन कहते है ।
प्रतिनीत दोष	देव गुरु आदि के प्रतिकूल होकर वन्दना करना ।
पातनिका	पीठिका ।
पीत	पीला ।
पोतज जन्म	जिस जीव को कोई आवरण नहीं होता और पैदा होते ही चलने फिरने लगते है जैसे हिरण ।
प्रत्यक्ष प्रमाणज्ञान	बिना किसी बाह्य आलम्बन के होने वाला ज्ञान । यह स्वाधीन ज्ञान है ।
प्रत्यक्षज्ञान	इन्द्रिय की सहायता के बिना होने वाला ज्ञान ।
प्रतीत्य सत्य	किसी विवक्षित पदार्थ की अपेक्षा से दूसरे पदार्थ के स्वरूप का कथन करना प्रतीत्य सत्य अथवा अपेक्षिक सत्य कहते है ।
प्रत्यय	कर्म आने का कारण ।
पूतिदोष	प्रासुक द्रव्य में अप्रासुक द्रव्य मिला देना अथवा पहले साधु को आहार कराकर ही हम इसे प्रयोग में लेंगे इस संकल्प के साथ नये चूल्हे बर्तन आदि का प्रयोग करना ।
पतन अन्तराय	मूर्छा, चक्कर, थकान आदि के कारण साधु के भूमिपर गिर जाने पर ।
प्रत्याहार	मनः प्रवृत्ति का संकोच कर लेने पर जो मानसिक संतोष होता है उसे प्रत्याहार कहते है ।
पृथकत्व	आगम में तीन से ऊपर और नव से नीचे की संख्या को पृथकत्व कहते है ।
पृथकत्व विक्रिया	अपनें शरीर से भिन्न मकान मण्डप आदि रुप बनाना ।
प्रथमानुयोग (कथानुयोग)	जिसमें धर्म , अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थों का कथन है । तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, और बलदेव आदि ६३ शलाका पुरुषों का वर्णन और उनके चरित्र निरुपक अनुयोग को प्रथमानुयोग कहते है । जैसे इसके ग्रंथ - आदि पुराण और उत्तर पुराण ।

प्रथमोपयोग सम्यग्दर्शन	इसकी प्राप्ति गर्भज, संज्ञी-पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, मिथ्यादृष्टि जीव, तीन कारणों द्वारा करते है ।
प्रार्थिवी धारणा	मैं सर्व कर्म मल को जलाकर आत्मा को शुद्ध करूँ इतना चिंतवन पार्थिवी धारणा है ।
पाथेय	संबल ।
पदार्थ	वस्तुपने के द्वारा जो निश्चय करते है उसका नाम पदार्थ है। सात तत्व के साथ में दो और तत्व याने पुण्य और पाप मिलाने पर नव पदार्थ होते है ।
पुद्गल	जो पूरता और गलता है अर्थात जिसके परमाणु मिल जाते है और बिखर जाते है उसे पुद्गल कहते है ।
पुद्गल द्रव्य	जिसमें स्पर्श, गंध, वर्ण, रस है वह पुद्गल द्रव्य है ।
पुद्गल क्षेप	मर्यादित क्षेत्र से बाहर के व्यक्तियों को कंकर, पत्थर आदि फेंक कर अपनी और आकर्षित करना ।
पदस्थध्यान	मंत्र पदो के द्वारा अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु तथा आत्मा के स्वरुप का चिंतन करना पदस्थध्यान है।
पदानुसारीबुद्धि	ग्रंथ के एक पद को ग्रहणकर संम्पूर्ण ग्रंथ को ग्रहण करनेवाली बुद्धि पदानुसारी बुद्धि है । (पदानुसारिणीक)
पद्मासन योग	बैठकर ।
पद विभागी समाचार	यह अपने संघ से संघान्तर जाने पर किया जाता है ।
प्रदेशत्व गुण	द्रव्य का वह गुण जिसके निमित्त से द्रव्य का कोई न कोई आकार बना रहता है ।
प्रदेश	एक पुद्गल परमाणु आकाश के जितने क्षेत्र को घेरता है उसे प्रदेश कहते है ।
प्रदेश बंध	आत्मा के साथ बंधने वाले कर्मो की संख्या को प्रदेश बंध कहते है ।
प्रदेशोदय	कर्म का अपना अपने चेतन अनुभूति कराये बिना ही निर्जरीत होना प्रदेशोदय कहलाता है ।
पादुस्कार दोष	साधु के घर पर आ जाने के बाद बर्तन मांजना, दीपक/ बिजली जलाकर मंडप को प्रकाशित करना तथा भोजन के पात्रों को एक स्थान से दुसरे स्थान पर ले जाना ।
पादान्तर प्राणि निर्गमन अंतराय	आहार के समय मुनि के दोनों पैरों के मध्य से चुहे आदि पंचेन्द्रिय के निकल जाने पर ।
प्रदुष्ट दोष	अन्य के साथ द्वेष, वैर, कलह आदि करके पुनःक्षमा न कराकर

	वंदना क्रिया करना ।
प्रादोषिक (पूर्वरात्रिक) स्वाध्यायकाल	सूर्यास्त के दो घड़ी बाद से लेकर अर्धरात्रि के दो घड़ी पहले तक पूर्व रात्रिक स्वाध्याय का काल है ।
पादेन किंचित	मुनि द्वारा भूमि पर पड़े स्वर्ण रत्नादि किसी वस्तु को हाथ से ग्रहण
ग्रहण अंतराय	करने पर ।
प्रध्वंसा भाव	आगामी पर्याय का वर्तमान पर्याय में अभाव को प्रध्वंसा भाव कहते है ।
प्रध्वंस	नाशक ।
पंडित मरण	चारों आराधनाओं से युक्त निर्ग्रंथ मुनियों के मरण का नाम पंडित मरण है । भक्त प्रत्याख्यान इंगिनि अथवा प्रायोपगमन विधि से होने वाला मरण पंडित मरण कहलाता है ।
पुनरुक्त	बार बार कहे गये ।
पंडित पंडित मरण	केवलज्ञानी भगवान की निर्वाणोप लब्धि पंडित पंडित मरण कहलाती है ।
पिंडशुद्धि	आहार की शुद्धता ।
पाप	जो आत्मा को अपवित्र करे उसे पाप कहते है । बुरे कर्मो को करना पाप है ।
प्रपंचो	कार्यों ।
पापानुबंधी पुण्य	भोगाकांक्षा और निदान, आदि से प्रेरित होकर किया जानेवाला शुभकर्मानुष्ठान,पापानुबंधी पुण्य कहलाता है ।
पाप के नाम	पाप, अधोमुख, एन, अघ, कंप, रोग, दुख, धाम, कलिल, कलुष, किल्विष, और दुरित-ये अशुभकर्म (पाप) के नाम है ।
प्राप्ति महाऋद्धि	भूमि पर स्थित रहकर अंगुली के अग्र भाग से सूर्य चन्द्र आदि का स्पर्श करने की सामर्थ्य ।
प्राप्यकर्म	कर्ता जो नया उत्पन्न नहीं करता तथा विकार करके भी नहीं करता, मात्र जिसे प्राप्त करता है वह कर्ता का प्राप्य कर्म है ।
प्राप्ति विक्रिया ऋद्धि	भूमि पर स्थित रहकर अंगुली के अग्रभाग से सूर्य, चन्द्र एवं सुमेरुपर्वत के शिखर आदि को छू लेने की सामर्थ्य ।
प्रबुद्धाचार्य	ऐसे आचार्य जिन्होंने अपनी प्रतिभा द्वारा ग्रंथ प्रणयन के साथ विवृत्तियां और भाषा भी रचे हे । कल्पना की उड़ान प्रबुद्धाचार्यो में अधिक है । इस श्रेणी में सभी आचार्य प्राय: कवि है ।
प्राभृत दोष	आहार देने योग्य काल का विचार किये बिना उसमें हानि वृद्धि

	करके आहार देना अर्थात आगम में जो वस्तु जिस दिन, पक्ष, मास या वर्ष में अथवा दिन के जिस अंश में देने योग्य कही है उसका उल्लंघन करके आहार देना ।
प्राभृत-प्राभृत	प्राभृत और अधिकार ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक है ।अतएव प्राभृत के अधिकार को प्राभृत कहते है ।
प्राभृत	सार रूप ।
प्रभावना अंग	रत्नत्रयात्म धर्म का प्रकाश (प्रचार) करना प्रभावना अंग है ।
प्रभावना	प्रभाव अतिशय या महिमा प्रकट करने को प्रभावना कहते है।
प्रमाद	आठ प्रकार की शुद्धि में और दशलक्षण धर्म में मंदता ही प्रमाद है और विकथा आदि को भी प्रमाद कहते है ।
प्रामृष्य दोष	ऋण लेकर आहार बनाना ।
प्रमादकारक अभक्ष्य	जिस पदार्थ के खाने से प्रमाद या काम विकार बढ़ता है उसे प्रमाद कारक अभक्ष्य कहते है ।
प्रमादचर्या	बिना मतलब पृथ्वी खोदना, पानी बहाना, बिजली जलाना, पंखा चलाना, आग जलाना तथा वनस्पति काटना, तोड़ना आदि प्रयोजन रहित क्रियाओं को प्रमादचर्या कहते हैं ।
प्रमेय	प्रमाण में आने योग्य ।
प्रमेयत्व गुण	द्रव्य का वह गुण जिससे वह (द्रव्य) जाना जाता है ।
प्रमाण	वस्तु के सच्चे ज्ञान को प्रमाण कहते है (सम्यग्ज्ञान) ।
प्रमाण/अतिमात्र दोष	मात्रा से अधिक आहार ग्रहण करना ।
प्रमत्त विरत गुणस्थान	संयत होते हुवे जिन जीवों के प्रमाद (१५) पाया जाता है उन्हे प्रमत्त विरत कहते है और उनके स्थान को प्रमत्त विरत गुणस्थान कहते है ।
पर्यायदृष्टि	अवस्था दृष्टि-विशेषदृष्टि-व्यवहार दृष्टि-इससे वस्तु अनवस्थित है ।
पर्याय	गुणों का विकार या विभाव भाव को पर्याय कहते है ।
प्रायश्चित	पूर्व कर्मों को नष्ट करना ।
पर्याय के नामान्तर	पर्याय, अंश, भाग, प्रकार, भेद, छेद, भंग, उत्पादव्यय, क्रमवर्तीक्रमभू , व्यतिरेकी, अनित्य, अनवस्थित ।
पर्यायार्थिक नय के नामान्तर	पर्याय दृष्टि, व्यवहार दृष्टि, विशेष दृष्टि, भेद दृष्टि, खण्डदृष्टि, अंश दृष्टि, अशुद्ध दृष्टि।
पर्यायार्थिक नय	अंशो को पर्याय कहते है । उन अंशो में से किसी एक विवक्षित अंश को कहनेवाली पर्यायार्थिक नय है । पर्याय अर्थात विशेष को

विषय बनाने वाला नय ।

प्रायोग्य लब्धि कर्मों की स्थिति घटना और अशुभकर्मों का अनुभाग बंध द्विस्थानीय होना प्रायोग्य लब्धि है ।

परिमाण प्रविधाय परिमाण करके ।

पर्युषण कर्मो को जलाना । इसे प्राकृत भाषा में पेजुस्सण कहते है।

पर्युषण पर्व के सार्थक नाम पर्वराज, महापर्व, दशलक्षण पर्व, पर्युषणपर्व, पर्युपासना पर्व, पज्जुसवण, संवतसरी पर्व (श्वे.), पज्जूषण , पर्युपवास, पर्युपशमना, पज्जुषणा।

पर्याप्ति पौद्गलिक शक्ति अर्थात जन्म के समय पुद्गल परमाणुओं को ग्रहणकर जीवन धारण में उपयोगी विशिष्ट प्रकार की पौद्गलिक शक्ति की प्राप्ति को पर्याप्ति कहते है । अथवा आहार वर्गणा, भाषा वर्गणा और मनोवर्गणा के परमाणुओं को आहार शरीरादि रूप परिणमाने की जो जीव शक्ति की पूर्णता है उसे पर्याप्ति कहते है ।

पर्यालोच विचार ।

प्रायोपगमन मरण अपने और पर के उपकार की अपेक्षा से रहित सल्लेखना को प्रायोपगमन मरण कहते है ।

पर्याप्तक जो जीव अपनी पर्याप्तियों को पूर्ण कर लेते हैं उन्हे पर्याप्तक कहते है । अर्थात जब जीव मन पर्याप्ति को पूर्ण कर लेता है तब पूर्ण पर्याप्त कहा जाता है ।

पर्याप्ति नाम कर्म जिस कर्म के उदय से जीव स्वयोग्य आहारादिक पर्याप्तियों को पूर्ण कर सके उसे पर्याप्ति नामकर्म कहते है ।

पर्यवसन्न निश्चय ।

पर्यंकासन पद्मासन ।

पेय दूध, पानी वगैरह ।

पर्ययवृत्ति शुद्ध परिणति (आत्मा के परिणाम)

प्रायोगिक शब्द जो शब्द पुरुष के प्रयत्न करने पर उत्पन्न होता है उसे प्रायोगिक शब्द कहते है ।

परिग्रह साधु तो परिग्रह थोड़ासा भी रखे तो भ्रष्ट हो जाता है और गृहस्थ परिग्रह नहीं रखे तो भ्रष्ट हो जाता है ।

परगत रूपस्थ ध्यान पंचपरमेष्ठी के स्वरूप चिंतन को परगत रूपस्थ ध्यान कहा है ।

परिग्रह संज्ञा भोगोपभोग के बाह्य साधनों के संचय आदि की इच्छा को परिग्रह संज्ञा कहते है ।

परिग्रह त्याग प्रतिमा	सभी प्रकार के परिग्रहो, जमीन जायदाद आदि से अपना स्वत्व-स्वामित्व छोड़ना परिग्रह त्याग प्रतिमा है ।
परमावगाढ़ सम्यक्त्व	केवल ज्ञानी का सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन)
परमेष्ठी	जो परमपद में स्थित है उन्हे परमेष्ठी कहते है । इन्द्र उन्हे नमस्कार करते है ।
परिग्रहीता इत्वरिका गमन	विवाही हुई व्यभिचारिणी स्त्री के पास जाना और आना वगैरह करना ।
परिग्रहानंदी रौद्रध्यान	जो तृष्णावान दूसरों को कष्ट देकर धनादि परिग्रही एकत्र करने की लालसा रखता है वह परिग्रहानंदी रौद्रध्यान है ।
पुरुषसिद्धि उपाय	जिन प्रवचन रहस्य कोश, पुरुष के प्रयोजन की सिद्धिका उपाय ।
पुराण	वह तथा जिसमें ६३ शलाका पुरुषों के सम्बन्ध में वर्णन होता है उसे पुराण कहते है (प्रथमानुयोग) । मुनियों के वचन ही पुराण है ।
पारिणामिकी	स्वतः सिद्ध ।
प्रेरक निमित्त	गुरु के उपदेशादि को प्रेरक निमित्त कहते है ।
परिवाद	किसी की निंदा करना यह परिवाद है -मिथ्या उपदेश ।
परमर्षि	केवल ज्ञानी अरिहंत परमर्षि कहलाते है ।
परिहार (त्याग)	किसी बड़े दोष का परिहार करने साधु को संघ से बाहर रखना, गुरु के सिवाय शेष साधुओं से संपर्क न रखना परिहार है ।
परिहार विशुद्धि	चारित्र की जिस विशुद्धि से हिंसा का पूर्ण रूपेण परिहार हो जाता है उसे परिहार विशुद्धि कहते है ।
पारिणामिकी प्रज्ञा बुद्धि	अपनी अपनी जाति विशेष से उत्पन्न हुई बुद्धि पारिणामिकी बुद्धि है ।
परोपरोधाकरण	अपने रहने के स्थान में निजत्व का भाव रखकर दूसरे साधु को उसमें ठहरने से नहीं रोकना परोपरोधाकरण है ।
पारिव्राज्य	गृहस्थी से विरक्त होकर दीक्षा धारण कर उत्कष्ट तपानुष्ठान करते हुवे ११ अंग का पाठी होना और १६ कारण भावना के बल से तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर अन्त में सल्लेखना पूर्वक देह त्याग करना पारिव्राज्य है ।
परम आर्हन्त्य	चक्रवर्ती के पद से विरक्त होकर दीक्षा धारण करना और छद्मस्थ काल बिताकर चार घातियां कर्मो के क्षय से केवलज्ञान सहित अनन्त चतुष्टय को प्राप्त करना परम आर्हन्त्य है ।
परम निर्वाण	परम आर्हन्त्य के बाद आयु के अन्त में शेष अघातियां कर्मोका

	क्षय करके सिद्ध अवस्था प्राप्त करना परम निर्वाण है ।
पारायण	तत्पर ।
परिश्रांत	खेद खिन्न ।
पराश्रित	किञ्चित मात्र कारण पाकर किसी द्रव्य का भाव किसी द्रव्य में स्थापन करने को पराश्रित कहते है । या एक के आश्रय रहनेवाला ।
परमाणु	पुद्गल की सूक्षतम ईकाई परमाणु है ।
परमार्थ संस्तव	अजीवादिक पदार्थो को हेय जानकर श्रद्धान करना । बारम्बार भेद ज्ञान द्वारा स्वरूप चिंतवन करके स्वरूप की श्रद्धा हुई, उसका नाम परमार्थ संस्तव है ।
परमार्थ विज्ञायक	परमार्थ (वस्तु स्वरूप) को जो विशेष रुप से जानता है वह परमार्थ विज्ञायक है ।
परिमाण गत प्रत्याख्यान	काल प्रमाण सहित उपवास करना जैसे षष्ट बेला , अष्टबेला आदि उपवास करना परिमाणगत प्रत्याख्यान है ।
परोक्ष प्रमाणज्ञान	बाह्य आलम्बन पूर्वक होनेवाला ज्ञान । यह पराधीन ज्ञान है ।
परिपीड़ित दोष	अपने दोनों हाथो से दोनों जंघाओं या घुटनों का स्पर्श करना ।
पारमार्थिक प्रत्यक्ष	वास्तविक प्रत्यक्ष है । यह सीधा आत्म साक्षात्कार है।
परिकर्म दृष्टिवाद अंग	इसमें गणित के कारण सूत्रों का वर्णन है ।
परिकर्म	योग की सिद्धि के लिये पहिले उसकी योग्यता उत्पन्न करने हेतु जो क्रियायें पाली जाती है उन्हे परिकर्म कहते है ।
परीक्षा प्रधानी	जो पुरुष प्रथम अपने सम्यग्ज्ञान द्वारा स्तुति करने योग्य गुणोंका निश्चयकर पश्चात बहुगुणी जानकर श्रद्धा करता है उसे परीक्षा प्रधानी कहते है ।
परकृत	पराधीन ।
परम गुरू	अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु ।
परमावधि अवधिज्ञान	जिस अवधिज्ञान की उत्कृष्ट मर्यादा असंख्यात लोक प्रमाण संयम के विकल्प है वह परमावधि अवधिज्ञान कहलाता है।
पारिणामिक भाव	कर्म के उपशम, क्षय, क्षयोपशम और उदय के बिना द्रव्य के स्वभाव मात्र से होनेवाले भाव को पारिणामिक भाव कहते है ।
परिषह	कर्मों की निर्जरा करने के लिये समताभावों से भूख आदि के कष्ट सहना । स्वयं अकस्मात आये हुवे कष्टोकि सहन करने को परिषह कहते है ।
पर	आत्मा से भिन्न वस्तुएं भिन्न कहलाती है अर्थात पर कहलाती है ।

परमुखोदयी प्रकृति	जो प्रकृति अन्य प्रकृति रूप उदय फल देकर विनष्ट हो जाती है वह परमुखोदयी प्रकृति है ।
परस्थितिकरण	अपनी आत्मा का दूसरे की आत्मा में स्थित करना परस्थितिकरण है ।
पर से सिद्धत्व	इसको जैनागम में विभाव भाव, अनित्य भाव, औदयिक औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक भाव कहा है ।
परोक्षज्ञान	इन्द्रिय आदि की सहायता से होने वाला ज्ञान ।
परमागम	उत्कृष्ट जैनागम ।
परघात नामकर्म	दूसरों को घात के योग्य तीक्ष्ण नख, सींग, दाढ आदि अवयवों को उत्पन्न करने वाले कर्म को परघात नामकर्म कहते है ।
परगत तत्त्व	पांचो परमेष्ठी परगत तत्त्व है।
परिवर्त दोष	साधु को उत्तम भोजन प्रदान करने की भावना से किसी से अपने मोटे चावल आदि के बदले उत्तम चावल आदि लेकर साधु को देना। यह दोष क्लेश का कारण है । दाता को जो कुछ भी जैसा भी घर में हो वही आहार देना चाहिये ।
परिवर्तन	एक भेद से दूसरे भेद पर पहुँचते के क्रम को परिवर्तन कहते है । या एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर जाने को परिवर्तन कहते है ।
परिस्पंद	हलन-चलन ।
परिवर्ज्य	छोड़ करके ।
प्रारब्ध योगी	शुद्धात्म भावना को प्रारम्भ करनेवाले पुरुष सूक्ष्म सकल्पावस्था में प्रारब्ध योगी कहे जाते है ।
परव्यपदेश	दूसरे दाता ने जो द्रव्य देने को रखा है उसे स्वयं दे देना ।
पुरन्ध्री	सन्तानवाली स्त्री ।
परम्परा पोषक आचार्य	वह भट्टारक है, जिन्होंने दिगम्बर परंपरा की रक्षा के लिये प्राचीन आचार्यो द्वारा निर्मित ग्रंथो के आधार पर अपने नवीन ग्रंथ लिखे ।
प्रावर्तित दोष	काल की वृद्धि या हानि करके आहार देना ।
प्राविष्करण दोष	आहारार्थ साधु के आने पर खिड़की आदि खोलना या बर्तन मांजना ।
पुलाक साधु	उत्तर गुणों की भावना से रहित और कदाचित मूलगुणों में भी दोष लगाने वाले मुनि पुलाक है ।
प्रलाप करना	बकना ।
पल्योपम	यह उपमा काल का प्रमाण है ।
प्रवृत्ति	राग द्वेष का होना ही प्रवृत्ति है ।
प्रविचार	काम सुख को प्रविचार कहते है । (भवनवासी देव) अर्थात मैथुन

	के उपसेवन को प्रविचार कहते है ।
पूर्व	काल का एक प्रमाण । यह चौरासी लाख वर्ष गुणित चौरासी लाख वर्ष का होता है । अथवा सामान्य या काल का एक प्रमाण ।
पूर्वस्तुति दोष	आहार से पूर्व दाता की प्रशंसा कर, उसके पूर्व दत्त दान का स्मरण करा कर आहार ग्रहण करना ।
पूर्व कोटि	एक करोड़ पूर्व ।
पूर्व गत	जो पूर्वों को प्राप्त हो अथवा जिसने पूर्वों के स्वरूप को प्राप्त कर लिया हो उसे पूर्वगत कहते है ।
प्रवज्यारूप	निश्चय चारित्र को ।
पर्व चतुष्टय	चार इष्ट पर्व - एक महिने में दो अष्टमी और दो चतुर्दशी
प्रवर्तक	संघ का संचालन करनेवाले मुनि को प्रवर्तक कहते है ।
प्रावचन	श्रुत ज्ञान का अपर नाम ।
पर्व बीज	जिन वनस्पतीयों का बीज उनका पर्वभाग होता है उन्हें पर्वबीज कहते है जैसे ईख, बेंत वगैरह ।
पवयणी	सिद्धांत का जानकार ।
प्रविष्ट दोष	अर्हंतादि के अत्यन्त निकट होकर वंदना करना ।
पूर्व रतानुस्मरण	पहिले किये हुवे भोगो का त्याग ।
प्रशमता	कषायों का उपशमन ।
प्रशम	क्रोधादि विकारों का अनुद्रेक (उद्रेक नही) अथवा अनन्तानुबंधी राग का उदय न होना प्रशम है ।
प्रशस्त. विहायोगति	शुभ-गमन आकाश में ।
प्रशस्त उपशम	जहाँ पर विवक्षित प्रकृति उदय योग्य भी न हो और उत्कर्षण अपकर्षण एवं संक्रमण योग्य भी न हो तो वहाँ प्रशस्त उपशम है ।
पैशुन्य	चुगली करना अथवा पीठ पीछे दोष दिखाना पैशुन्य है ।
पैशुन्यहास गर्भ	दुष्टता अथवा निंदारूप हास्यवाला ।
प्रश्नव्याकरण	यह द्वादशांगवाणी का १० वा अंग है । इसमें प्रश्नानुसार ना... मुष्टी आदि के आधार पर लाभ हानि बताने का वर्णन है ।
पश्चात स्तुति दोष	दान ग्रहण करके दाता की प्रशंसा करना ।
प्रोषध	एक बार भोजन (एकासन) अथवा पर्व ।
प्रोषधोपवास	पर्व में पाप से छुटकर धर्म में वास करना ।
प्रोषधोपवास प्रतिमा	पूर्व ग्रहीत सभी व्रतों के साथ अष्टमी और चतुर्दशी को प्रोषधोपवास

	करना प्रोषधोपवास प्रतिमा है ।
प्रोषध दिन	दो अष्टमी और दो चौदश एक मास में ।
प्रेष्य प्रयोग	मर्यादा के बाहर कुछ भेजना ।
प्रेषण	मर्यादित क्षेत्र से बाहर किसी को भेजना ।
प्रासुक	एकेन्द्रिय आदि जीवों से रहित वस्तु ।
प्रस्तार	संख्या के रखने या निकालने के क्रम को प्रस्तार कहते है ।
प्रस्रवण अंतराय	आहार के समय मुनि को खून, वीर्य आदि निकल जाने पर ।
पहित अशन दोष	भारी वस्तु से ढके भोजन को ग्रहण करना ।
प्रहार अन्तराय	स्वयं पर अथवा निकटवर्ती व्यक्ति पर शस्त्र प्रहार होने पर
पाहुड़	ग्रंथ ।
पाक्षिक प्रतिक्रमण	प्रत्येक मास में १५ दिन में चतुर्दशी या अमावस्या अथवा पूर्णिमा को जो वृहद प्रतिक्रमण किया जाता है वह पाक्षिक प्रतिक्रमण है ।
प्रज्ञापरीषहजय	अपने पाण्डित्य का अहंकार न होना प्रज्ञा परीषहजय है ।
प्रज्ञाश्रमणत्व	अध्ययन के बिना ही १४ पूर्वो के अर्थ का निरूपण करने वाली बुद्धि (प्रज्ञा) यह प्रज्ञा श्रमणत्व है ।
प्रज्ञा	भेद विज्ञान ।
प्रज्ञापनी भाषा	मैं क्या करूँ इस तरह के सूचना वाक्यों को प्रज्ञापनी भाषा कहते है ।

फ

फलोदय	कर्म का अपनी फलानुभूति कराते हुवे निर्जरित होना फलोदय है ।
फास	स्पर्श ।
फालि	एक समय में संक्रमण होने को फालि कहते है ।

ब

बकुशमुनि	मूलगुणों का निर्दोष पालन करनेवाले, शरीर और उपकरणों में आसक्त, ऋद्धि और यश के अभिलाषी तथा परिवार से घिरे रहनेवाले मुनि बकुश कहलाते है ।
बीज बुद्धि	एक ही बीज पद को ग्रहणकर उस पद के आश्रय से सम्पूर्ण श्रुत का विचार करनेवाली बुद्धि (वीर्य बुद्धि)
बीजमंत्र	अनेक अक्षरों के संयोग से बननेवाले मंत्र को बीज मंत्र कहते है ।
बीज रूह	जो वनस्पतियां बीज से पैदा होती है उन्हे बीज रूह कहते है । जैसे धान, गेहूँ वगैरह ।

बीज सम्यकत्व	बीज पदों के श्रवण से उत्पन्न श्रद्धान बीजसम्यकत्व है ।
बादर जीव	जिस नाम कर्म के उदय से जीव स्वयं दूसरों से बाधित होता है और दूसरों को भी बाधित करता है उसे बादर जीव (एकेन्द्रिय) कहते है ।
बादर बादर	जिसका छेदन भेदन अन्यत्र प्रापण हो सके उस स्कंध को बादर बादर कहते है यथा पृथ्वी ।
बादर	जिसका छेदन भेदन न हो सके किंतु अन्यत्र प्रापण हो सके उस स्कंध को बादर कहते है जैसे जल ।
बादर सूक्ष्म	जिसका छेदन भेदन अन्यत्र प्रापण कुछ भी न हो सके ऐसे नेत्र से देखने योग्य स्कंध को बादर सूक्ष कहते है जैसे छाया।
बादर स्थूल	जो शरीर दूसरों को रोकने वाला हो अथवा जो स्वयं दूसरों से रुके उसको बादर स्थूल कहते है ।
बादर दोष	सूक्ष्म दोषों की अलोचना न करके केवल स्थूल दोषों की आलोचना करना बादर दोष है ।
बादर नामकर्म	स्थूल शरीर उत्पन्न करानेवाला कर्म बादर नामकर्म है और इस कर्म के उदय से जीव दूसरों को बाधा पहुँचाता है और स्वयं दूसरों से बाधित होता है ।
बद्धायुष्क	आगामी भव की आयु के बंध से युक्त जीव बद्धायुष्क कहलाता है ।
बोधितबुद्ध	(सिद्ध अनुयोग द्वार) जो दुसरे प्राणी से उपदेश पाकर सिद्ध होते है वे बोधित बुद्ध कहलाते है ।
बंध	यह आत्मा और कर्म की एकी भूत अवस्था है । कर्म के परमाणुओं का आत्मा के साथ एक मेक हो जाना ही बंध है
बोधि	सम्यग्ज्ञान आदि जिन्हे नहीं था उन्हे सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र की प्राप्ति होना बोधि कहलाता है ।
बद्ध	द्रव्य कर्म से बंधा हुवा - संसारी ।
बध्यमान आयु की सत्ता	बंद की गई आयु की सत्ता ।
बन्धन नामकर्म	जीव का उन पुद्गल स्कंधो के प्रदेशों का जिस कर्म के उदय से आपस में सम्बन्ध हो उसे बन्धन नाम कर्म कहते है।
बद्धत्व	ज्ञान का राग रूप परिणमनाबद्धत्व है । पुद्गल का कर्मत्व रूप परिणमना बद्धात्व है ।
बद्धज्ञान	जो ज्ञान मोह कर्म से आच्छादित है, प्रत्यर्थ परिणमनशील है वह बद्धज्ञान है ।

बंध का हेतु	आश्रव ।
बोधिदुर्लभ भावना	सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होवे ऐसा चिंतन करना ।
बालमरण	असंयत सम्यग्दृष्टि का मरण बालमरण कहलाता है ।
बाल बाल मरण	मिथ्यादृष्टि जीवों का मरण बालबाल मरण है ।
बाल पंडित मरण	देशव्रती श्रावक के मरण को बाल पंडित मरण कहते है ।
बलिदोष	यक्ष, नाग, कुलदेवता आदि के लिये निर्मित आहार मुनि को देना ।
बलात्कार	जबरदस्ती ।
बीस प्ररूपणा	गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, उपयोग और १४ मार्गणा । इन सब का योग २० होता है, इनके आश्रय से जीव के निरूपण को बीस प्ररूपणा कहते है ।
बहुमानाचार	ज्ञान के उपकरण एवं गुरुजनों की विनय करना ।
बहुमान	पुस्तक, गुरू आदि का बहुत आदर सत्कार पूर्वक पढ़ना , मान देना ।
बहु	एक जाति की बहुत सी व्यक्तियों को बहु कहते है ।
बहुमान शुद्धि	पूजा, सत्कार पूर्वक पठन आदि करना ।
बहुश्रुत	द्वादशांग के पारगामी अथवा स्वसमय और पर समय (सिद्धांतो) के ज्ञाता मुनि ।
बहुज्ञान	एक से अधिक पदार्थों का अवग्रह आदि ज्ञान होना ।
बहुविध	बहुत प्रकार की वस्तुओं का अवग्रह आदि ज्ञान होना ।
बहुजन दोष	गुरु के द्वारा प्रदत्त प्रायश्चित को अन्य प्रायश्चित कुशल आचार्यों से चर्चा कर स्वीकार करना बहुजन दोष ।
ब्रह्म	शुद्ध आत्मा ।
ब्रह्मचर्य	ब्रह्म अर्थात आत्मा में रमण करना ब्रह्मचर्य है ।
ब्रह्मचर्य आश्रम	विवाह से पूर्व ब्रह्मचर्य धारणकर अध्ययन आदि करना ब्रह्मचर्य आश्रम है ।
बाह्य निर्वृत्ति	अपने अपने स्थान पर नो कर्मरूप पुद्गल वर्गणाओं कां जो आकार बनता है उसे बाह्य निर्वृत्ति कहते है ।
ब्रह्मर्षि	बुद्धि और औषधि ऋद्धि के धारी मुनिराज को ब्रह्मर्षि कहते है ।
ब्रह्मचर्य प्रतिमा	मन, वचन, काय से स्त्री मात्र के संसर्ग का त्याग करना । (ब्रह्मचर्य महाव्रत) ही ब्रह्मचर्य प्रतिमा है ।
ब्रह्मभाव	सर्व प्राणियोंपर अहिंसामयी भाव को ही जगत में परम ब्रह्म भाव कहते है ।

बाह्य उपधि त्याग	आत्मा से पृथक धन, धान्यादि के प्रति ममता का त्याग करना बाह्य उपधि त्याग है ।
बहिरात्मा	शरीर और आत्मा को जो एक गिनता है वह बहिरात्मा है।
ब्रह्मबेला	सूर्योदय के २४ मिनट पहिले से सूर्योदय के २४ मिनट बाद तक का समय ब्रह्मबेला या ब्रह्ममुहुर्त कहलाता है क्यों कि तीर्थंकर की वाणी इसी मुहर्त में खिरती है ।

भ

भोग	तीन इन्द्रियों के विषय भोग है । गंध, रूप व शब्द ये तीन भोग है जो एक दफे भोगने में आवे वो भोग है ।
भंग	उस स्थान की एक सी समान संख्या रूप प्रकृतियों में जो संख्या समान ही रहे परंतु प्रकृतियां बदल जाय तो उसे भंग कहते है अथवा भेद।
भोगभूमि प्रतिभाग	मानुषोत्तर पर्वत के परवर्ती भाग से लेकर स्वयं प्रभ नागेन्द्र के बाहरी भाग तक के द्वीप ।
भोगान्तराय कर्म	जिस कर्म के उदय से प्राप्त भोग्य वस्तु का भोग न किया जा सके, वह भोगान्तराय कर्म है ।
भोगोपभोग परिमाण व्रत	भोग और उपभोग के साधनों का कुछ समय या जीवन पर्यंत के लिये त्याग करना भोगोपभोग परिमाण व्रत है ।
भाजन संपात अंतराय	आहार के समय दाता के हाथ से बर्तन आदि गिर जाने पर भाजन संपात अंतराय होती है ।
भुज्यमान	जिसको भोग रहा है ।
भट्टारक	अर्हंत, सिद्ध और साधु को भट्टारक कहा गया है ।
भक्त प्रत्याख्यान मरण	स्व-पर की वैयावृत्तिपूर्वक होनेवाली सल्लेखना अथवा समाधिमरण को भक्त प्रत्याख्यान मरण कहते है ।
भक्त प्रतिज्ञा	अर्थात भोजन की प्रतिज्ञा कर जो सन्यास मरण हो उसके काल का प्रमाण जघन्य (कम) उत्कृष्ट (ज्यादा से ज्यादा १२ वर्ष) मध्यम दोनों के बीच का ।
भक्ति	पंच परमेष्ठीयों में अनुराग ।
भूतार्थ	सत्यार्थ (निश्चयनय) । पदार्थ में पाये जाने वाले भाव उनका अर्थ ज्यों का त्यों प्रकाश करना इसे ही भूतार्थ कहते है ।
भूतपूर्व	पुरानी ।

भूतनैगम नय	भूतकाल की बात को वर्तमान में संकल्प करना, भूत नैगमनय है ।
भदन्त	जो सब कल्याणों को प्राप्त हो वह भदन्त है ।
भेदज्ञान	भेद-ज्ञान का अर्थ शरीर और चेतन के बीच का भेद । अर्थात स्वानुभूति ।
भेद विज्ञान	निज और पर का विवेक - भेद विज्ञान है ।
भ्रामरीवृत्ति	मुनिराज दाता के द्वारा दिये गये आहार को ग्रहण करते समय उन्हे किंचित भी पीड़ित नहीं करते जैसे भ्रमर अपनी नासिका द्वारा कमल गंध को ग्रहण करते समय कमल को किंचित मात्र भी बाधा नहीं पहुंचाता है इसको भ्रामरी वृत्ति कहते है ।
भ्रम	स्व स्वरूप में संशय ।
भूमिसंस्पर्श अन्तराय	आहार करते समय साधु के हाथ से भूमि का स्पर्श हो जाने पर, भूमि संस्पर्श अन्तराय होती है ।
भय	डर (उद्वेग) अर्थात सल्लेखना धारी को क्षुधा आदि वेदना का भय भी मन से निकाल देना चाहिये ।
भय दोष	सात प्रकार के भय से डरकर वंदना करना ।
भ्रुविकार दोष	कायोत्सर्ग करते समय भृकुटियो को चढ़ाना या विकार युक्त करना ।
भव्यत्व मार्गणा	जिस जीव में सिद्ध पद प्राप्त करने की योग्यता होती है उसे भव्यत्व मार्गणा कहते है ।
भव्यत्व भाव	जिनमें रत्नत्रय प्रकट करने की योग्यता है वे भव्य भाव है ।
भव्य भाव विपाकात	भव्यत्व भाव की पर्याय अशुद्ध थी । उसको टालकर अपने पुरुषार्थ से जीव शुद्ध पर्याय प्रगट करता है वह ही भव्यत्व भाव का विपाक होता है ।
भव्य जीव	मोक्ष जाने की योग्यता रखनेवाले जीव भव्य कहलाते है । अर्थात जिन जीवों को आगे सिद्ध पद की प्राप्ति होनोवाली है उन्हे भव्य जीव कहते है ।
भाव	द्रव्य की गुणशक्ति अथवा उसकी परिणति विशेष को भाव कहते है । अर्थात चेतन व अचेतन सभी द्रव्य के अनकों स्वभाव है वे सब उसके भाव कहलाते है ।
भाव जिन	समवशरण में विराजमान भगवान भाव जिन है ।
भावान्तर	वस्तु का ऐक आकार बदलकर दूसरे आकार रूप हो जाय इसका नाम भाव से भावान्तर कहलाता है ।

भाव के पर्याय वाचक	भाव, परिणाम, शक्ति, विशेष स्वभाव, प्रकृति, स्वरूप, लक्षण ।
भाव बंध	राग और ज्ञान के बंध को भाव बंध या जीवबंध कहते है ।
भावनिक्षेप	जो व्यक्ति या वस्तु जिस पर्याय में परिणत है, उसके लिये उसी शब्द का प्रयोग करना भावनिक्षेप है ।
भाव पूजा	मन को पूजन में लगाना भावपूजा है । विकल्प से रहित होना भाव पूजा है ।
भावाश्रव	मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषाय से कर्म आने का भाव होता है उसे भावाश्रव कहते है ।
भावपुण्य	दान, पूजा, भक्ति, दया, परोपकार आदि शुभ परिणाम भाव पुण्य है ।
भाव पाप	आत्मा में उत्पन्न होने वाले मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा आदि रूप मनो विकारों को भाव पाप कहते है।
भाव- प्रतिक्रमण	राग द्वेषादि दोषों से होने वाले अतिचारों से अपने को हटाना भाव प्रतिक्रमण है ।
भावकर्म	द्रव्य पिंड में फल देने की जो शक्ति है वह भाव कर्म है ।
भाव नमस्कार	जिनको नमस्कार करने का है उनके गुणों को स्वंय के भाव में प्रेम पूर्वक धारण करना वह भाव नमस्कार है ।
भाव लिंगी	जो साधु शरीर आदि की मुर्छा से रहित है, मान- कषाय आदि से पूर्णपने अलग तथा जिसका आत्मा आत्मा में मगन है, वही भाव लिंगी है ।
भाव संवर	आत्मा के जिन विशुद्ध परिणामो से कर्मो का आश्रव रुकता है वह भाव संवर है ।
भव सिद्ध	जिन जीवों को अनन्त चतुष्टय रूप सिद्धि होने वाली हो अथवा जो उसकी प्राप्ति के योग्य हो, उनको भव सिद्ध कहते है ।
भाव सत्य	आगमोक्त विधि-निषेध के अनुसार अतीन्द्रिय पदार्थों में संकल्पित परिणामों को भाव कहते है, उसके आश्रित वचन को भाव सत्य कहते है ।
भाव निर्जरा	आत्मा के जिन विशुद्ध भावों के कारण कर्म परमाणु आत्मा से प्रथक होते है वह भाव निर्जरा है ।
भाव वेद	वेद नो कषाय को भाव वेद कहते है ।
भाव परिवर्तन	सब कर्मो की स्थितियों को भोगने को भाव परिवर्तन कहते है ।
भाव श्रुत	जिनागम की अक्षर रचना, पुस्तकादि उसका वाचन विचार आदि भाव श्रुत है ।

भाव सामायिक	सम्पूर्ण इष्ट और अनिष्ट विषयो में राग द्वेष का त्याग करके समता भाव धारण करना ही भाव सामायिक है ।
भाव तीर्थ	रत्नत्रय से परिपूर्ण हुवे तीर्थंकर भावतीर्थ है । द्वादशांग श्रुतज्ञान भी भाव तीर्थ है इससे सम्पुर्ण कर्ममल का नाश होता है ।
भाव स्तव	जिनेन्द्र देव के केवलज्ञान आदि गुणोंका स्तवन करना भावस्तव है ।
भावना	संसार, शरीर, भोग के बार बार चिंतवन करने को भावना कहते है ।
भवनत्रिक	भवनवासी, व्यंतर और ज्योषिष्क देवों को भवनत्रिक भी कहते है ।
भावेन्द्रिय	मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली विशुद्ध अथवा उस विशुद्धि से उत्पन्न होनेवाले उपयोगात्मक ज्ञान को भावेन्द्रिय कहते है ।
भवनवासी देव	भवनों में निवास करनेवाले देवों को भवनवासी देव कहते है ।
भवावतारी देव	ये स्वर्ग से च्युत होकर मनुष्य होते है ।
भव विचय	संसार के दुखमय स्वरूप का चिंतन ।
भव प्रत्यय अवधिज्ञान	यह देवों और नारकियों में पाया जाता है । जिस अवधिज्ञान के होने में भाव निमित्त है वह भव प्रत्यय अवधिज्ञान है ।
भावी द्रव्य कर्म	जो कर्म के स्वरूप को कहने वाला शास्त्र का जानने वाला आगे होगा वह ज्ञायक शरीर भावी जीव है ।
भव प्रत्यय विभंग	देव नारकीयों के विपरीत अवधिज्ञान को भव प्रत्यय विभंग कहते है ।
भवानुगामी अवधिज्ञान	जो अवधिज्ञान भव से भवान्तर तक अनुगमन करे ।
भवितव्य	वह कार्य जो कि उस निश्चित समय में होने योग्य है ।
भाव मोक्ष	आत्मा के सम्पूर्ण गुणों की शुद्धता को भाव मोक्ष कहते है।
भष्म	राख ।
भाषासमिति	अमृत के समान मिष्ट वचन बोलना ।
भाष्य	स्वोपज्ञ ।
भाषावर्गणा	भाषा के रूप में परणत होने वाले पुद्गल ।
भिक्षुक आश्रम	समस्त आरम्भ परिग्रह का त्यागकर मुनि दीक्षा धारण करना भिक्षुक आश्रम है ।
भैक्ष्य शुद्धि	भिक्षा के नियमों का उचित ध्यान रखकर भिक्षा लेना भैक्ष्य शुद्धि है ।

म

मूकबंदना दोष	गुंगे के समान वंदना के पाठ को मुख के भीतर ही बोलना अथवा वंदना करते समय हुंकार ऊंगली आदि से इशारा करना ।

मुक्तजीव	कर्म रहित जीव को मुक्तजीव कहते है ।
मूक दोष	मूक मनुष्य के समान मुख विकार करना , नाक सिकोड़ना।
मौखर्य	व्यर्थ बकबाद करना ।
मुख्य (अस्तिरुप) के नामान्तर	विवक्षित, उन्मग्न, अर्पित, अनुलोम, उन्मज्जत ।
मुख्य काय	जो अखण्ड प्रदेशी है – अखण्डितानेक प्रदेश रूप है उन द्रव्यों को मुख्य काय कहते है । जैसे जीव, धर्म, अधर्म, आकाश ।
मुख्य विनय	सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र को पूज्य बुद्धि से आदर पूर्वक धारण करना ।
मार्ग सम्यकत्व	मोक्ष मार्ग को कल्याण कारी समझकर उस पर अचल श्रद्धान।
मार्गणा	जिनके माध्यम से या जिनमें जीवों का अन्वेषण (खोज) किया जाता है उन्हे मार्गणा कहते है । उदाहरण गति आदि १४ (चौदह) स्थान ।
मंगल	जो पापों को गलावे और पुण्य को प्रदान करे । अर्थात केवली भगवान द्वारा प्रणीत धर्म मंगल है ।
मार्गोपसंपत समाचार	समागत मुनि से आयागमन सम्बन्धी कुशल क्षेम पूछना मार्गोपसंपत समाचार है ।
मंडली	समूह ।
मूर्छा	ममत्व परिणाम -इच्छा ।
मूढ़ता	धार्मिक अन्ध विश्वास ।
मूढ़ दृष्टि	सत्य और असत्य मार्ग के विचार एवं विवेक से रहित होकर उन्मार्ग एवं उन्मार्गियों के प्रति झुकाव रखना ।
मूढ़	जो देह को ही आत्मा मानता है वह प्राणी मूढ़ है ।
मत्स्योद्धत वंदना दोष	जिस प्रकार मछली एक भाग-को उपर कर के उछला करती है उसी प्रकार कटि भाग को उपर निकालकर वंदना करना।
मूर्तिक	रूप, रस और स्पर्श सहित वस्तु को मूर्तिक कहते है ।
मूर्त	पुद्गल सत में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण रूप मूर्ति पाई जाती है वह मूर्त है ।
मतिज्ञान	इन्द्रिय और मन से उत्पन्न होने वाला ज्ञान मतिज्ञान है । मतिज्ञान मनन प्रधान होता है । मतिज्ञान से होने वाला बोध स्वगत होता है मतिज्ञान मूक है । मतिज्ञान श्रुतज्ञान पूर्नक नहीं होता । मतिज्ञान कारण है ।

मतिज्ञानावरण	मतिज्ञान को आवृत तथा हीनाधिक करते है उसे मतिज्ञानावरण कहते है ।
मात्सर्य	अन्य दाताओं से ईर्षा रखना उनके गुणों को न सह पाना ।
मिथ्या दर्शन वाक्	मिथ्या मार्ग प्रवर्तक उपदेश मिथ्यादर्शन वाक् है ।
मिथ्यादर्शन	जीवादि ७(सात) तत्वों का विपरीत श्रध्दान। अर्थात मिथ्यात्व कर्म के उदय से धर्म में अरुचि होना मिथ्यादर्शन है ।
मिथ्यात्व	सात तत्वों का यथार्थ श्रद्धान नहीं होना ।
मिथ्या नय	नया भास । जो नय के स्वरूप के विरुध्द है ।
मिथ्यात्व भाव	मिथ्यादर्शन ।
मिथ्याकार	व्रतों में अतिचार लगने पर, यह अतिचार मिथ्या हो, ऐसा फिर नहीं करूंगा, ऐसा कहना ।
मैथुन	काम सेवन ।
मिथ्यात्व, मिथ्यादर्शन	पर्यायवाची शब्द है ।
मिथ्यात्व गुणस्थान	मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से होने वाले तत्व को मिथ्यात्व कहते है जो अश्रद्धान रूप परिणाम से उत्पन्न होता है । उसका स्थान मिथ्यात्व गुणस्थान कहलाता है ।
मार्दव	जाति आदि ८ मद के न करने को मार्दव कहते है ।
मधुस्त्रावी रस ऋद्धि	जिस ऋद्धि के प्रभाव से मुनियों के हाथ में रखे गये आहार आदिक क्षण भर में मधुर रस रूप हो जाते है वह मधुस्रावी रस ऋद्धि है ।
मध्यम पात्र	जो देशव्रत और सम्यक्त्व से शोभित हो वह मध्यम पात्र है।
मध्यम स्वर	जो स्वर हृदय देश में स्थित होता है उसे मध्यम स्वर कहते है । (कौंच पक्षी का स्वर मध्यम)
मध्यम ध्वनि	मनुष्य के कण्ठ देश से जो ध्वनि उच्चारित होती है वह मध्यम ध्वनि है ।
मध्यम अन्तरात्मा	श्रावक के व्रतों को पालनेवाले गृहस्थ और प्रमत्त गुण स्थान वर्ती मुनि मध्यम अन्तरात्मा है ।
माध्यस्थ	राग, द्वेष पूर्वक पक्षपात कान करना माध्यस्थ्य है । (माध्यस्थ्य)
मध्य लोक	लोक के मध्य भाग को मध्य लोक कहते है । मध्य लोक में मनुष्य और तिर्यंचों का आवास है । व्यन्तर और ज्योतिषी देवों का आवास भी मध्य लोक में ही होता है ।
मधुकर वृत्ति	भ्रमर के समान वृत्ति ।
मुनि	शील और संयम की कला से पूर्ण है उसी को हम मुनि कहते है ।

	और जो अवधिज्ञानी, मनः पर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी ही मुनिराज कहलाते है ।
मनीषी	बुद्धिमान ।
मुनित परमार्थ	जिनागम द्रव्य श्रुत द्वारा अर्थ को जानकर ज्ञान ज्योति का अनुभव हुआ उसको मुनित परमार्थ कहते है ।
मुनिकुंजर	मुनिवर - श्रेष्ठ ।
मुनिपुंगव	मुनि श्रेष्ठ ।
मुनीश्वर के नाम	मुनि, महंत, तापस, तपी, भिक्षुक, चारित्र धाम, यती, तपोधन, संयमी, व्रती, साधु और ऋषि- ये मुनि के नाम है।
मनुष्य क्षेत्र	जम्बू द्वीप, लवण समुद्र, घातकी खण्ड, कालोदक समुद्र, और पुष्कर वर द्वीप का आधा भाग मनुष्य क्षेत्र कहलाता है।
मनुष्य गति	जिस कर्म के उदय से यह जीव मनुष्य के शरीराकार हो उसे मनुष्यगति कहते है ।
मन शुद्धि	आर्त और रौद्र ध्यान से रहित अवस्था मनशुद्धि है ।
मन दुष्प्राणिधान	मन की खोटी प्रवृत्ती (मनः दुःप्राणिधान)
मनोगुप्ति	मन को अशुभ भावों से बचाकर आत्म हितकारी शुभ विचारों में लगाना मनोगुप्ति है ।
मनोवर्गणा	मन के रूप में परिणत होने वाले पुद्गल ।
मनःपर्ययज्ञान	इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना ही दूसरों के मन में स्थित पदार्थों को स्पष्ट जानने वाला ज्ञान मन पर्यय ज्ञान है। यह ज्ञान संस्कार रूप से स्थित मन के इन्हीं विकल्पों को जानता है अर्थात द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से परकीय मनोगत सरल और गुढ़ रूपी पदार्थ को जानने वाला ज्ञान ।
मनोयोग	मन की प्रवृत्ति के निमित्त से होनेवाले आत्म प्रदेशों का परिस्पंदन ।
मानसिक आहार	मानसिक चिंतन से होने वाला आहार ।
मनःपर्यय ज्ञानावरण	मन पर्यय ज्ञान को आवृत तथा हीनाधिक करते है ।
मंत्र दोष	अंजन चूर्ण आदि प्रदान कर आहार ग्रहण करना
मांसादिदर्शन अन्तराय	आहार के समय मद्य, मांस आदि दिख जाने पर
मन्द्र	मनुष्यों के उर प्रदेश से जो बाइस प्रकार की ध्वनि उच्चारित होती है वह मन्द्र है ।
मनोज्ञ (इष्ट)	लोक प्रतिष्ठित प्रभावक मुनि मनोज्ञ माने जाते है ।
मनोदुष्ट दोष	मन में गुरु आदि के प्रति द्वेष धारण कर वन्दना करना अथवा

	संक्लेश युक्त मन सहित वन्दना करना ।
मुमुक्षु	मोक्ष की इच्छा करनेवाला मुमुक्षु कहलाता है । मोक्षाभिलाषी।
माया	आत्मा का कुटिल भाव माया है तथा अपने हृदय के विचार को छुपाने की जो चेष्ठा की जाती है उसे माया कहते है ।
मायागता चूलिका	इसमें इन्द्रजाल आदि माया के उत्पादक मंत्र तंत्रों का वर्णन है ।
मूलकर्म/वशदोष	अवश को वश करने का उपाय बताकर आहार ग्रहण करना।
मालारोहण दोष	नसेनी (सीढ़ी) आदि के द्वारा घर की दूसरी मंजिल पर चढ़कर वहाँ से आहार लाकर देना ।
मूलगुण	जो गुणों में मुख्य होते है वे मूलगुण कहलाते है । मुनियों के प्रधान आचरण को भी मूलगुण कहते है ।
मलिन सम्यग्दर्शन	सम्यक्त्व प्रकृतिके उदय से जिसमें पूर्ण निर्मलता नहीं है उसे मलिन सम्यग्दर्शन कहते है ।
मूलबीज	जिन वनस्पतियो का बीज उनका मूल ही होता है उन्हे मूलबीज कहते है जैसे अदरक, हल्दी वगैरह ।
माला दोष	पीठादि पाटा आदि के उपर आरोहण कर खड़े होना ।
मारणान्तिक समुद्धात	मृत्यु के समय मूल शरीर को छोड़े बिना आत्म प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलकर आगामी उत्पत्ति स्थान तक फैलना मारणान्तिक समुद्धात है ।
मेरु पर्वत	जो पर्वत मध्य में विराजमान रहते है उन्हे मेरु पर्वत कहते है ।
मरण	दस प्राणों के वियोग को लोक में मरण कहते है ।
मरणाशंसा	सल्लेखना धारी को मरण की आकांक्षा भी नहीं करनी चाहिये ।
मारुती धारणा	यह पवन मेरे आत्मा के उपर पड़ी हुई शरीर व कर्म रज को उड़ा रही है ऐसा ध्यान करना ।
मसि कर्म	लिखने पढ़ने के द्वारा, मुनीमी आदि करके अपनी जीविका चलाना ।
मिश्र पूजा	सचित्त और अचित्त पूजा -दोनो प्रकार की पूजा मिश्र द्रव्य पूजा है ।
मिश्र दोष	पाखण्डी साधुओं और गृहस्थों के साथ मुनि को आहार देना ।
मिश्र अर्थात सम्यक्त्व मिथ्यात्व गुणस्थान	जिस जीव की समीचीन और मिथ्या दोनों प्रकार की दृष्टियाँ होती है उसको मिश्र (सम्यक्–मिथ्या) दृष्टि कहते है और उसके स्थान को मिश्र गुणस्थान कहते है ।
महासत्ता	सामान्य । जो सत् सम्पूर्ण पदार्थों के समूह को स्पर्श करने वाला है उसे महासत्ता कहते है ।
मोह	राग, द्वेष व मिथ्यात्व भावों को मोह कहते है ।

मोहभाव	मूर्छित करने वाले भाव को मोह भाव कहते है ।
मोहनीय कर्म	चेतना को मूर्छित कर आचार और विचार शक्ति को विकृत करता है । यह कर्मो का राजा है ।
महामह पूजा	देव इन्द्रो द्वारा की जानेवाली अर्हत भगवान की पूजा ।
महापूजा	मण्डलेश्वर राजाओं द्वारा की जाने वाली पूजा ।
महमहिम पूजा	अर्ध मण्डलेश्वर राजाओं द्वारा की जानेवाली पूजा ।
महिमा महाऋद्धि	शरीर को मेरु की तरह विशाल बना लेने की सामर्थ्य ।
महिमा विक्रियाऋद्धि	मेरु प्रमाण शरीर बनाने की सामर्थ्य ।
महातपऋद्धि	जिस ऋद्धि के प्रभाव से मुनिगण चार सम्यग्ज्ञानो के बल से महान उपवासों को करते है वह महातप ऋद्धि है ।
महाव्रत	हिंसा आदि पापों का सर्वथा त्याग करना ।
महाकल्प अंग बाह्य	मुनियों की दीक्षा, शिक्षा, भावनात्मक संस्कार, गणपोषण और उत्तमार्थ /सल्लेखना आदिका निरुपक शास्त्र ।
महाव्रती संयमी	जिसके प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ का अभाव हो गया है वही महाव्रती संयमी है ।
महापुण्डरीक अंगबाह्य	देवियों में उत्पन्न कराने वाले पुण्य का प्ररुपक शास्त्र ।
मुहुर्त	४८ मिनट का एक मुहुर्त होता है ।
महाव्रतरूप चारित्र	हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन ५ पापों से पूर्णतया विरक्त होना महाव्रत रूप चारित्र है ।
मृषानंदीरौद्रध्यान	जो असत्य बोलकर, असत्य बुलाके प्रसन्न होता है वह मृषानंदीरौद्रध्यान है ।
मृषा	असत्य (झूठ) ।
मोष	चोरी ।
मोषवाक्	जिससे चोरी में प्रवृत्ति हो वह मोषवाक् है ।
मोक्ष तत्व	सभी कर्मो का क्षय होना मोक्ष है अर्थात वह मोक्ष तत्व है ।
मोक्ष मार्ग के नेता	तीर्थंकर ।
मोक्ष के नाम	सिद्ध क्षेत्र, त्रिभुवनमुकुट, शिवथल, अविचलस्थान, मोक्ष, मुक्ति, वैकुंठ, शिव, पंचमगति, निर्वाण ये सब मोक्ष के नाम है ।
मोक्ष मार्ग का कारण निश्चय से	सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र मयी निज आत्मा को निश्चय नयसे मोक्ष का कारण जानो ।
मोक्ष	आठ कर्मो से आत्मा का पूर्ण छूटकारा पाना मोक्ष है । बन्धन से मुक्ति को मोक्ष कहते है । मोक्ष का अर्थ मुक्त होना अर्थात आत्मा

	की शुद्ध अवस्था (कर्म रहित)।
मोक्ष मार्ग	समीचीन ध्यान ।
मोक्ष के साधन	संवर और निर्जरा मोक्ष के साधन है ।
मृक्षित अशनदोष	घी, तेल, आदि से लिप्त हाथ या पात्र से आहार लेना ।
मोक्षोपाय	मोक्ष का उपाय ।
मित्रानुराग	सल्लेखना धारी को मित्रों को मिलने की भावना मित्रानुराग है ।
मित्र	हितैषी ।

य

योग	मन वचन काय के निमित्त से जो आत्मा में हलन चलन हो। जीव के प्रदेशों में हलन-चलन । जो सम्बन्ध अर्थात संयोग को प्राप्त हो वह योग है । योग का अर्थ मिलन और समाधि ।
युग प्रमाण	चार हाथ ।
योग के एकार्थ वाचक नाम	साम्य, स्वास्थ्य, समाधि, योग, चित्त निरोध और शुद्धोपयोग ।
योगी प्रवीर	श्रेष्ठ योगीजन ।
योगमार्गणा	जो संयोग को प्राप्त हो उसे योग कहते है अथवा मन वचन काय के निमित्त से जो आत्म प्रदेशों में परिस्पंदन होता है वह योग मार्गणा है ।
योगवाही	निमित्त कारण।
योगस्थान	प्रकृति बंध और प्रदेशबंध के कारण आत्मा के प्रदेश-परिस्पंदन रूप योग के तरतमरुप स्थानों को योगस्थान कहते है ।
यौगिक या योगांतिक प्रतिक्रमण	पांच वर्ष के अन्त में जो गुरू के सानिध्य में बड़ा प्रतिक्रमण होता है वह यौगिक या योगांतिक प्रतिक्रमण कहलाता है।
युग	दो कल्पोंका एक युग होता है ।
युगादि पुरुष	युग के आदि में होने से कुलकरों को ही युगादि पुरुष कहते है ।
युग दोष	जैसे कंधे से जुएँ से पीड़ित बैल गर्दन फैला देता है वैसे ही ग्रीवा को लम्बी करके कायोत्सर्ग करना ।
याचनी भाषा	यह मुझको दो, इस तरह के प्रार्थना वचनों को याचनी भाषा कहते है ।
योजन	चार कोस ।
यति	उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी में विराजमान यति है ।
युत सिद्धता	दो पदार्थो के संयोग से एक पदार्थ ।

यति धर्म	मुनियों के धर्म को यति धर्म कहते है ।
यतिवर वृषभ	निजशुद्धात्म में जो यत्नशील है वे यति है और जो प्रधान हैं वे यतिवर वृषभ है ।
यत्याचार	साधुओं के आचार विचार को यत्याचार कहा जाता है ।
यत्किंचित	जो थोड़ा भी ।
यथाकाल निर्जरा	सविपाक द्रव्य निर्जरा ।
यथाजात	व्यवहार से नग्न पने को यथाजात रूप धर कहते है ।
यथार्थ	जो पदार्थ जिस स्वभाव में स्थित है उसको यथार्थ कहते है - सार्थक ।
यथाख्यात	यथाख्यात संयमका अर्थ है वीतराग का चारित्र
यथाख्यात चारित्र	कषायों का सम्पूर्ण अभाव से उत्पन्न आत्मा की शुद्धि विशेष को यथाख्यात चारित्र कहते है । निष्कम्प सहज शुद्ध आत्म स्वभाव यथाख्यात चारित्र है ।
योनि	जीवों के उत्पन्न होने के स्थान को योनि कहते हैं ।
योनिभूत	मूल कारण ।
यम	भोग और उपभोग्य वस्तुओं का जो जीवन पर्यंत के लिये त्याग किया जाता है उसको यम कहते है ।
यशकीर्तिनाम कर्म	जिस कर्म के उदय से लोक में यश, कीर्ति, ख्याति और प्रतिष्ठा मिलती है वह यश कीर्ति नाम कर्म है ।
यक्षेश्वर	अभिनन्दन भगवान का शासक देवता ।
याज्ञिक मत	संसारी जीव की कभी मुक्ति नहीं होती ऐसा याज्ञिक मत वाले मानते है ।

र

रूचि	तत्वार्थो के विषय में तन्मयपना रूचि कहलाती है ।
राग रहित	वीतराग ।
राजु	क्षेत्र माप की उत्कृष्ट इकाई असंख्यात योजन का एक राजू होता है ।
राजर्षि मुनि	अक्षीण और विक्रिया ऋद्धिधारी मुनिराज राजर्षि कहलाते है।
रथावर्तन पूजा	विद्याधर राजाओं द्वारा की जाने वाली पूजा ।
रत्नत्रय	सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र इन तीन गुणों को रत्नत्रय कहते है ।
रति	राग (मोह) ।

रात्रिक प्रतिक्रमण	रात्रि सम्बन्धी दोषों के निवारण हेतु जो पश्चिम रात्रि में प्रतिक्रमण किया जाता है वह रात्रिक प्रतिक्रमण है ।
रोधन अन्तराय	किसी के द्वारा आहार के लिये रोक लगाने पर ।
रूधिर अन्तराय	भोजन के समय स्व या पर के शरीर में चार अँगुल या उससे अधिक तक बहते हुये, खून, पीव आदि दिखने पर ।
राध	आराधना, प्रसन्नता, पूर्णता। पर द्रव्य के परिहार से शुद्ध आत्मा की शुद्धि अथवा साधन सो राध है ।
रूपानुपात	मर्यादा के बाहर रूप दिखाकर प्रयोजन बता देना ।
रूपगता चूलिका	इसमें सिंह, व्याघ्र, गज, सर्प, नर, सूर आदि के रूपों को धारण करनेवाले मंत्र तंत्रो का वर्णन है ।
रूपातीत ध्यान	सिद्ध परमेष्ठी के गुणो का चिंतन करना रूपातीत ध्यान है।
रूपस्थ ध्यान	समवशरण में विराजमान अर्हंत परमेष्ठी के स्वरूप का चिंतन रूपस्थ ध्यान है ।
रूप सत्य	पुद्‌गल के रूपादिक अनेक गुणों में से रूप की प्रधानता से जो वचन कहा जाय उसको रूप सत्य कहते है ।
रूपाभिव्यक्ति	मर्यादित क्षेत्र से बाहर के व्यक्ति को अपने शारीरिक अभिनय इशारों से अपनी और आकर्षित करना ।
रौद्रध्यान	हिंसा आदि पाप कर्म करके गर्व पूर्वक डींगे मारते रहने का भाव रौद्रध्यान है । क्रूर परिणामों से अनुबंधित ध्यान रौद्रध्यान है ।
रस नाम कर्म	शरीर में तिक्त, कटु, अम्ल, मधुर और कसैला रस कर्म को रस नाम कर्म कहते है ।
रसातल	नरक ।
रस	जो स्वाद को प्राप्त होता है वह रस है ।
रसनेन्द्रिय निरोध	सरस, मधुर भोजन में या नीरस, शुष्क भोजन में हर्ष-विषाद नहीं करना रसनेन्द्रिय निरोध है ।
रस परित्याग	मीठा, लवण, दुध, घी, दही, तेल इन छह रसों में से एक व अनेक का त्याग ।
रहोभ्याख्यान	दूसरो के गुप्त रहस्यों को उजागर कर देना रहोभ्याख्यान है ।

ल

लोकाकाश	ये छह द्रव्य आकाश के जितने हिस्से में रहते है उसको लोकाकाश कहते है ।
लोक	द्रव्यों की परस्पर में एक क्षेत्रावगाह रूप स्थिति को लोक कहते है ।

लोक बिंदूसार	इसमें निर्वाण के सुख का वर्णन है ।
लोक भावना	तीन लोक का चिंतवन करना ।
लौकिक सुख	यह विषय जनित होने से सर्व परिचित है ।
लुंकामत	ढुंढीया या स्थानक वासी मत ।
लोकोत्तर पुराण	जिसमें लोक, देश, पुर, राज्य, तीर्थ, दान, बाह्यतप, आभ्यान्तर तप इन आठ का वर्णन हो जिसमें गति और फल का वर्णन भी हो, वह लोकोत्तर पुराण है ।
लौकिक पुराण	जिसमें उत्पत्ति, विस्तार, वंश, मनुष्य का युग, वंशो का चारित्र ये पांच लक्षण हो तो वो लौकिक पुराण है ।
लौकिक सूत्र	गणितादि शास्त्र लौकिक सूत्र है ।
लोक	षट द्रव्यात्मक लोक है ।
लोकाकार	पर्याय में ज्ञान के पूर्ण जानने की ताकत का नाम लोकाकार है ।
लेखना	कषाय को क्षीण-कृष करना ।
लिंग (सिद्ध अनुयोगद्वार)	लिंग का अर्थ वेद नोकषाय और स्त्री-पुरुष आदि का बाह्य चिन्ह है ।
लघिमा महाऋद्धि	शरीर को भार रहित बना लेने की सामर्थ्य ।
लघिमा विक्रिया ऋद्धि	शरीर को वायु से भी हलका करने की क्षमता ।
लता दोष	वायु से हिलती लता के समान हिलते हुये कायोत्सर्ग करना।
लेप्याहार	शरीर के स्पर्श मात्र से ग्रहण किया जाने वाला आहार ।
लिप्त दोष	गेरु आदि से लिप्त हाथ से या पात्र से दिये हुए आहार का ग्रहण लिप्त दोष है ।
लब्धि	सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये कुछ विशिष्ट योग्यताओं की प्राप्ति को लाब्धि कहते है । ज्ञान आदि शक्ति विशेष को लाब्धि कहते है। ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम को लाब्धि कहते है ।
लब्ध्यपर्याप्तक	वह जीव लब्ध्य पर्याप्तक है जो एक भी पर्याप्ति को पूर्ण नहीं करता और एक श्वास के १८ भागों में से एक भाग में ही मर जाता है ।
लब्धि अपर्याप्त	पर्याप्तियों के पूर्ण होने से पूर्व ही जिनका मरण हो जाता है उन्हे लब्धि अपर्याप्त कहते है ।
लंबोदर दोष	नाभि से उर्ध्व भाग को लंबा करके अथवा कायोत्सर्ग में स्थित हुए अधिक ऊंचे होना या झुकना लम्बोदर दोष है ।
लंबित	कायोत्सर्ग का एक दोष ।
लाभान्तराय कर्म	जिस कर्म के उदय से बुद्धि पूर्वक श्रम करने पर भी लाभ होने में

बाधा हो वह लाभान्तराय कर्म है ।

लेश्या मार्गणा — जो कर्म स्कंध से आत्मा को लिप्त करती है उसे लेश्या कहते है अथवा कषाय अनुरंजित योग की प्रवृत्ति को लेश्या कहते है ।

लेश्या — मनुष्य के अच्छे बुरे भावों को लेश्या कहते है । योग की प्रवृत्ति को लेश्या कहते है । कषायों के उदय से अनुरंजित मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को लेश्या कहते है ।

लेह्य — रबड़ी, वगैरह ।

लक्ष्य — संकल्परूप मन को लक्ष्य कहते है ।

लक्षण — स्वरूप ।

लक्ष्यभ्रष्ट — इष्टकार्य से विमुख ।

लक्ष पर्वा — एक औषध - विद्या ।

व

विक्रिया — परिणति । अणिमा, महिमा आदि ८ गुणों की सामर्थ्य से अपने शरीर को एक अनेक तथा छोटा बड़ा रूप बनाना ।

विकल प्रत्यक्ष — देश प्रत्यक्ष कर्मो के क्षयोपशम से होता है किंतु कर्मो के क्षय से नहीं होता तथा विनाशिक भी है । या अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान विकल प्रत्यक्ष है ।

विकल्प — उपयोग संक्रांति-ज्ञप्ति परिवर्तन - साकार - क्षायोपशमिक ज्ञान।

विगूर्व (वैक्रियक) — नाना प्रकार के गुण और ऋद्धियों से युक्त देव तथा नारकीयों के शरीर को वैक्रियिक अथवा विगूर्व कहते है ।

वैकृत — विकारी ।

वैक्रियिक शरीर वर्गणा — वैक्रियिक शरीर के रूप में परिणत होनेवाले पुद्गल को वैक्रियिक शरीर वर्गणा कहते है ।

विकल — अपूर्ण ।

वैक्रियिक शरीर — देवों और नारकियों का स्थूल शरीर वैक्रियिक शरीर है ।

वैक्रियिक काय योग — देव और नारकीयों के शरीर को वैक्रियिक अथवा विगूर्व कहते है और इसके द्वारा होनेवाले योग को वैगूर्विक अथवा वैक्रियिक काय योग कहते है ।

वैक्रियक समुद्घात — वैक्रियिक शरीर / लब्धि से युक्त जीवों द्वारा किसी प्रकार की विक्रिया उत्पन्न करने के लिये अर्थात शरीर को छोटा बड़ा या अन्य शरीर रूप करने के लिये मूल शरीर का त्याग कर आत्म

	प्रदेशों का बाहर आना वैक्रियिक समुद्धात कहलाता है ।
विकार्य कर्म	कर्ता के द्वारा, पदार्थ में विकार करके जो कुछ किया जाये वह कर्ता का विकार्य कर्म हैं । (जैसे दूध से दही बनाना)
विकलेन्द्रिय जीव	दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रिय जीवों को विकलेन्द्रिय जीव कहते है ।
विकलपरमात्मा	शरीर रहित अर्थात सिद्ध देव ।
विकल चारित्र	एक देश चारित्र -परिग्रह से युक्त ग्रहस्थों के होता है ।
विकल्प सामान्यग्राही	अखण्डग्राही ।
विकल्पात्मक	ज्ञेयाकार ।
वर्ग	परमाणु के अविभाग प्रतिच्छेद रूप शक्ति समूह को वर्ग कहते है ।
वर्गणा	वर्गो के समूह को वर्गणा कहते है । अनन्त पुद्गल परमाणुओं के समूह को वर्गणा कहते है । सजातीय पुद्गल परमाणुओं के विभिन्न समूहों को वर्गणा कहते है ।
वाग्मित्र	उपदेश देने में कुशलता ।
वाङ्गमय	समस्त श्रुत ।
वाग्देवी	सरस्वती ।
विघ्न	चित विक्षेप का नाम विघ्न है ।
वचनात्मक विकल्प	द्रव्य नय ।
विचार	वि + चार, जिसमें ४ "वि" होते है उसको विचार कहते है । ४ वि - १) विनय २) विवेक ३) विराग ४) विराम
विचिकित्सा	रत्नत्रय के प्रति अनादर रखते हुवे धर्मात्मा जनों के मलिन शरीर को देखकर उनसे घृणा करना और मन मे ग्लानि भाव उत्पन्न करना । विचिकित्सा अर्थात ग्लानि ।
वैचित्य	स्व स्वरूप की वीपरीतता ।
वचन शुद्धि	कर्कश कठोर वचन नहीं बोलना वचन शुद्धि है ।
वचन दुष्प्राणिधान	वचन की खोटी प्रवृत्ति (वचन दुःप्रणिधान)
वचन गुप्ति	मुख से अच्छे बुरे किसी प्रकार के शब्द न बोलकर मौन रहना, वचन गुप्ति है । पाप के हेतुभूत ऐसे स्त्री कथा, राजकथा, चोरकथा, भक्तकथा, इत्यादिरूप वचनों का त्याग करना ।
वाचना	ग्रंथो को अर्थ सहित पढ़ना / पढ़ाना वाचना है ।
विच्चाले	विचले, बीचके— मध्यवर्ती ।
वाच्य	विषय ।

वचन योग	वचन की प्रवृत्ति के निमित्त से होनेवाला आत्म प्रदेशों का परिस्पंदन - वचन योग है ।
विचय	विचार ।
विचक्षण	चतुर ।
विच्छिन्न	टूटक ।
वर्णनामकर्म	शरीर को वर्ण (रंग) प्रदान करनेवाले कर्म को वर्ण नाम कर्म कहते है ।
विटत्व	काम सम्बन्धी कुचेष्टाओं को विटत्व कहते है ।
वाणिज्य कर्म	व्यापार करना ।
वज्र नाराच संहनन	वज्र के सामान हड्डी व कीले हो ।
वज्रवृषभनाराच सहनन	वज्र के सामान दृढ़ हड्डी, नसें व कीले हों ।
वृत्ति	टीका ।
वीतराग सम्यग्दर्शन	राग रहित सम्यग्दर्शन वीतराग सम्यग्दर्शन कहलाता है ।
वीतराग सम्यक्त्व	११ वें गुणस्थान से मोह के अभाव में क्षमादि लक्षण रहित मात्र आत्मा की विशुद्धि रूप जो सम्यक्त्व है वह वीतराग सम्यक्त्व है ।
व्रतारोपणी प्रतिक्रमण	व्रतो के आरोपण के समय जो आचार्य द्वारा प्रतिक्रमण सुनाया जाता है वह व्रतारोपणी प्रतिक्रमण है ।
वीतराग	क्षुधा तृषादिक १८ दोषों से रहित अवस्था ।
वृत्ति परिसंख्यान तप	मुनि आहार के लिये नियम करते है कि इतने घरों तक ही जाऊँगा और इस रीति से आहार मिलेगा तो लूंगा अन्यथा नहीं इसे वृत्ति परिसंख्यान तप कहते है ।
वार्ता	असि, मसि आदि षट कर्मों से अपनी जीविका चलाना वार्ता है ।
व्रत	अच्छे कामों को करना और बुरे कामों को छोड़ना । पांचो पापों से विरक्त होना ।
वत्सल अंग	साधर्मियों के साथ गाय और बछड़े के समान प्रीति रखना।
व्रती	जो सम्यग्दृष्टि व्रत से युक्त होता है वह व्रती है ।
वितत	ढोल वगैरह के शब्द को वितत कहते है ।
व्रत प्रतिमा	दार्शनिक श्रावक के समस्त नियमों का पालन करते हुवे निशल्य होकर ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रतों का निरतिचार पालन करना व्रत प्रतिमा है ।
वृथा	निष्फल ।

वेदक या क्षयोपशम सम्यक्त्व मोहनीय प्रकृति के उदय से पदार्थों का जो चल मलिन

सम्यक्त्व	और अगाढ़ दोष सहित श्रद्धान होता है उसको वेदक सम्यक्त्व कहते है ।
वेद मार्गणा	जिसका वेदन (अनुभव) किया जाय उसे वेद कहते है अथवा जिस नो कषाय कर्म के उदय से मैथुन करने के भाव उत्पन्न हो उसे वेद कहते है ।
वेदक	भोक्ता या उदय का भोक्ता ।
वादित्व	वाद के द्वारा इन्द्र के पक्ष को भी निरस्त कराने में समर्थ बुद्धि (वाद) । वाद में जीतने की शक्ति ।
वादी	हट द्वारा द्वैत का आग्रह छुड़ावे और मिथ्यावाद मिटावे ।
वेदनीय कर्म	सुख दुख की अनुभूति कराता है वह वेदनीय कर्म है ।
वेदना समुद्घात	वात, पित्त, कफ आदि के विकार जनित रोग या विषपान आदि की तीव्र वेदना से आत्म प्रदेशों का शरीर से ब्राहर निकलना वेदना समुद्घात कहलाता है ।
विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर	१) कम से कम २० (२) ज्यादा से ज्यादा १६० तीर्थंकर होते है ।
वेद	व्यक्ति में पाये जानेवाले स्त्रीत्व, पुरुषत्व के भाव वेद कहलाते हैं या सिद्धांतशास्त्र।
वेदन	ज्ञान ।
वैदिक सूत्र	सिद्धांत सम्बन्धी सूत्र वैदिक सूत्र कहलाते है ।
वेदिका बद्ध दोष	अपने स्तन भागों का मर्दन करते हुवे वन्दना करना या दोनों भुजाओं द्वारा अपने दोनो घुटनों को बांध लेना ।
विद्या दोष	दाता को आकाश गामिनी आदि विद्याओं का प्रलोभन देकर आहार ग्रहण करना ।
विद्या कर्म	बहत्तर कलाओं द्वारा अपनी आजीविका चलाना ।
वर्धमान अवधिज्ञान	जो अवधि ज्ञान शुक्लपक्ष की चन्द्र कलाओं की तरह अपनी अन्तिम सीमा तक निरंतर बढ़ता जाता है वह वर्धमान अवधिज्ञान है ।
विद्यानुवाद पूर्व	इसमें पांच सौ महाविद्याओं, सातसौ क्षुद्र विद्याओं और अष्टांग महानिमित्तो का वर्णन है ।
विद्याधर	जाति, कुल और तप इन तीन प्रकार की विद्याओं से युक्त मनुष्य विद्याधर कहलाता है ।
विनयाचार	द्रव्य, क्षेत्र आदि की शुद्धि के साथ विनयपूर्वक शास्त्र अभ्यास करना ।
विनयकर्म	जिसके द्वारा कर्मो का संक्रमण, उदय, उदीरणा आदि रूप परिणमन

	करा दिया जाता है , ऐसे कार्य को विनय कर्म कहते है ।
वन्दना के पर्याय नाम	कृतिकर्म, चितिकर्म, पूजा कर्म, विनय कर्म।
वन्दना	अरिहंत, सिद्धों की प्रतिमा को एवं आचार्यादि को मन, वचन, काय से प्रणाम करना वंदना है । तीर्थंकरों के गुणो का कीर्तन ।
वंदना अंगबाह्य	इसमें एक जिनेन्द्र की वन्दना की विधि का निरुपण है । यह अंगबाह्य श्रुत ज्ञान का तीसरा ग्रंथ है ।
वन्दना आवश्यक	एक तीर्थंकर सिद्ध, आचार्यादि की वंदना करना विधिवत भक्तिपाठ पूर्वक कृति कर्म करना वन्दना आवश्यक है ।
विनय	पूज्य पुरुषों एवं मोक्ष के साधको के प्रति हार्दिक आदर भाव "विनय" है । जिनागम की महिमा को बढ़ाने का प्रयास विनय है ।
वैनयिकी प्रज्ञा बुद्धि	द्वादशांग श्रुत के योग्य विनय से उत्पन्न होने वाली प्रज्ञा वैनयिकी बुद्धि है ।
विनयोपसंपत समाचार	अन्य संघ से समागत मुनियों का विनय करना विनयोप संपत समाचार है ।
वैनयिक अंग बाह्य	चार प्रकार के विनय का विस्तार से कथन करनेवाला शास्त्र वैनयिक अंग बाह्य है ।
विनय मिथ्यात्व	सत्य, असत्य का विचार किये बिना तथा विवेक के अभाव में जिस किसी की भी विनय को ही अपना कल्याणकारी मानना ।
वनीपक दोष	दाता के अनुकूल वचन बोलकर आहार ग्रहण करना यह मुनि के लिये वनीपक दोष है ।
विनय तप	पुज्य पुरुषों का आदर करना विनय तप है ।
विनय शुद्धि	मन, वचन काय की शुद्धि पूर्वक अत्यर्थ विनय से श्रुत का पठन-पाठन करना विनय शुद्धि है ।
वनीपक	दाता के अनुकूल वचन वनीपक है ।
वानप्रस्थ आश्रम	घर गृहस्थी से उदासीन होकर ऐलक, क्षुल्लक अवस्था में रहना वानप्रस्थ आश्रम है ।
विपाक विचय	सुख दुख को देखकर कर्म प्रकृतियो के स्वरूप का चिंतन करना विपाक विचय है ।
विपाक सूत्र	इसमें पुण्य पाप के विपाक (फल) का कथन है ।
विपुल मति मनः पर्ययज्ञान	ऋजु (सरल) और वक्र दोनो प्रकार के मानसिक, वाचिक और कायिक मनोगत विषय को जानता है ।
विपर्यय	उल्टे ज्ञान को विपर्यय कहते है ।

विपाक	फल ।
विपरीत मिथ्यात्व	पदार्थ को अन्यथा मानकर अधर्म में धर्म बुद्धि रखना ।
विप्रतिपत्ति	एक वस्तु में परस्पर विरोधी दो बादों का नाम विप्रतिपत्ति है। (विपरीत निश्चय का नाम विप्रतिपत्ति है)
विभाव पर्याय	जो पर्याय पर सम्बन्ध के निमित्त से होती है उसे विभाव पर्याय कहते है ।
विभ्रम	अज्ञानपना या अजानपना ही विभ्रम है ।
विभाव	कर्मो के उदय से होने वाले जीव के रागादि विकारी भावों को विभाव कहते है ।
विभव	सम्पदा ।
विभाव के नाम	परकृत भाव, पराकार भाव, पुद्गल भाव कर्मजन्य भाव, पर द्रव्य, उपाधि ।
वैभाविकी	द्रव्य में रहनेवाली (अन्तर्लीन - तादात्मरूप) वैभाविक शक्ति है उसका नाम वैभाविकी है ।
विभक्ति	विभाग करने को विभक्ति कहते है ।
विभंग ज्ञान	मिथ्या दर्शन से युक्त अवधिज्ञान । इसमें दर्शन का कथंचित सद्भाव व अभाव है ।
वैभाविक भाव	औदयिक भाव या विशेष भाव ।
विभ्य दोष	गुरू आदि से डरते हुये वन्दना करना (मुनि के लिये)
विमोह	कुछ है, केवल इतना ही जानने को विमोह कहते है ।
वैमानिक्र देव	जो विमानों में निवास करते है वे वैमानिक देव है ।
वामन संस्थान	बौना शरीर बनानेवाले कर्म को वामन संस्थान नामकर्म कहते है ।
विमो चित्ता वास	जिस आवास को दूसरों ने त्याग दिया हो अथवा जो मुक्त द्वार हो उसमें निवास करना विमोचित्तावास है ।
व्यंजन	व्यक्त या स्पष्ट ।
व्यक्त	प्रकट - बुद्धिपूर्वक ।
व्युच्छिति	बिछुड़ना ।
व्युच्छिन्न होना	बिछुड़ जाना ।
व्यक्त प्रमाद	जिसका स्वयं अनुभव हो सके अथवा कदाचित जिसका दूसरों को भी परिज्ञान हो सके उसको व्यक्त प्रमाद कहते है।
व्यंजनावग्रह	इन्द्रियों से प्राप्त सम्बद्ध अर्थ को व्यंजन कहते है और इसके ज्ञान को व्यंजनावग्रह ज्ञान कहते है ।

व्यक्तिरूप चक्षुदर्शन	पर्याप्त जीवों के व्यक्ति रूप चक्षुदर्शन होता है ।
व्यवहार सत्य	नैगमादि नयों की प्रधानता से जो वचन बोला जाय उसको व्यवहार सत्य कहते है ।
व्यवहार सम्यग्ज्ञान	व्यवहार कहता है कि आचारादि (चार अनुयोंगों का ज्ञान) सम्यग्ज्ञान है । जिनागम से आगम पूर्वक सात तत्वों को जान लेना ।
व्यवहारचारित्र	व्यवहार कहता है कि षट काय के जीवों की रक्षा व्यवहार चारित्र है । प्रवृत्ति-परक मन वचन काय की अशुभ प्रवृत्तियों को त्याग कर व्रत, समिति आदि शुभ प्रवृत्तियों में लीन होना व्यवहार चारित्र है ।
व्यवहार काल	समय, पल, घड़ी, घंटा, मिनट आदि व्यवहार काल है ।
व्यवहार नय	संग्रह नय से ज्ञात पदार्थ का विधिपूर्वक भेद करनेवाला नय व्यवहार नय है । पर सापेक्ष परिणमन को विषय बनानेवाला नय व्यवहार नय है । पराश्रितरूप कथन उपचार कथन कहलाता है ।
व्यवहार पटु	व्यवहार प्रायश्चित में निष्णात आचार्य व्यवहार पटु कहलाते है ।
व्यवहार मोक्ष मार्ग	जीवादि ७ तत्वों का श्रद्धान और ज्ञान पूर्वक रागादिक पर भावों के परिहार रूप चारित्र की एकता को व्यवहार मोक्ष मार्ग कहते है। यह शुभोपयोग और सराग चारित्र भी कहलाता है । भेद रत्नत्रय है ।
व्याप्ति	इसके बिना यह नहीं । साहचर्य रूप साध्य-साधन के नियम को व्याप्ति कहते है । अर्थात अविनाभाव ।
व्यस्त-समस्त	भिन्न भिन्न को व्यस्त और अभिन्न को समस्त ।
व्यवहार	व्यवहार भेद को कहते है । भेद में राग, आश्रव, बंध, संसार है । पर्यायार्थिक नय ।
व्यवहार सम्यक् चारित्र	सर्व पाप सम्बन्धी मन, वचन, काय की प्रवृत्ति का त्याग ।
व्यवहार का साधन	पर लक्ष है ।
व्यवहार सम्यग्दर्शन	व्यवहार कहता है कि देव, शास्त्र और गुरू या नव तत्वों (पदार्थों) का श्रद्धान व्यवहार सम्यग्दर्शन है ।
वायस दोष	कौवे के समान इधर उधर देखना वायस दोष है ।
वैयाकरण	विद्वान ।
व्यवस्थिती	व्याख्या ।
व्युत्सर्ग	परिग्रह के त्याग को व्युत्सर्ग कहते है । अहंकार और ममकार का त्याग करना व्युत्सर्ग है ।

व्युत्सर्ग तप या प्रायश्चित	बाहर से क्षेत्र वास्तु आदि का और अभ्यन्तर में कषाय आदि का अथवा नित्य व अनियत काल के लिये शरीर का त्याग करना व्युत्सर्ग तप या व्युत्सर्ग प्रायश्चित है कायोत्सर्ग आदि करना व्युत्सर्ग प्रायश्चित कहलाता है ।
व्युत्सर्ग आवश्यक	कायोत्सर्ग (शरीर का ममत्व छोड़कर विशेष प्रकार के आसन पूर्वक ध्यान करना)।
व्यंजक	प्रकट करनेवाला / वाली ।
व्यतिरेकी	भिन्न भिन्न को व्यतिरेकी कहते है । पर्याय क्षणक्षयी है प्रतिक्षण बदलती रहती है अतः व्यतिरेकी कहलाती है । यह पर्याय सूक्ष्म है ।
व्यतिरेक	विशेष । भिन्न २ समयों में होनेवाले भिन्न आकारों में परस्पर अभाव घटित करना,इसी का नाम व्यतिरेक है ।
व्यतिक्रम	विषयों की आभिलाषा को व्यतिक्रम कहते है ।
व्युत्पन्न	ज्ञानी ।
व्यय	द्रव्य में पूर्व पर्याय के नाश को विनाश होना पर्याय है ।
व्यक्त	बुद्धिपूर्वक प्रकट ।
व्युतपरत क्रिया निवृत्ति	इस ध्यान में आत्मा के समस्त प्रदेश निष्प्रकम्प हो जाते है इस ध्यान में किसी प्रकार की मानसिक, वाचिक और कायिक क्रियायें नहीं होती इस कारण इसे व्युत्परत क्रिया निवृत्ति कहते है ।
व्यंजन पर्याय	जो पर्याय स्थूल होती है, सर्व साधारण के बोध का विषय बनती है, त्रैकालिक स्थायी होती है और जिसे शब्दो द्वारा व्यक्त किया जा सकता है यह व्यंजन पर्याय है ।
व्यंजनावग्रह मतिज्ञान	इसमें पदार्थ का अव्यक्त बोध होता है ।
व्याख्या प्रज्ञप्ति	इसमें जीव है कि नहीं इत्यादि प्रकार से गणधर देव द्वारा किये गये ६०,००० प्रश्नों का समाधान है । यह द्वादशांग का ५ वां अंग है ।
व्याख्या प्रज्ञप्ति परिकर्म	यह दृष्टिवाद के परिकर्म का ५ वा भेद है । इसमें रूपी अरूपी छह द्रव्यों का वर्णन है ।
व्यय के नामान्त	व्यय, भंग, ध्वंस, संहार, नाश, विनाश, अभाव, उच्छेद।
व्यपरोपयति	पृथक कर देता है ।
वैयावृत्य	धर्मात्माओं की सेवा करना ।
वीर्यानुप्रवादपूर्व	इसमें बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, इन्द्र, तीर्थंकर आदि के बल का वर्णन है । १४ पूर्व में यह तीसरा पूर्व है ।

वीर्याचार अपनी सामर्थ्य न छिपाते हुवे निर्मल रत्नत्रय में प्रवृत्ति करना ।

व्यंजन शुद्धि वर्ण, पद, वाक्यों को शुद्ध पढ़ना व्यंजन शुद्धि है ।

व्यंजनावग्रह अव्यक्त (अप्रगट रूप) पदार्थ के अवग्रह को व्यंजनावग्रह कहते है ।

वीर्य द्रव्य की अपनी शक्ति विशेष वीर्य है ।

वीर्यान्तरायकर्म जिस कर्म के उदय से सामर्थ्य होते हुवे भी कार्यो के प्रति उत्साह न हो उसे वीर्यान्तराय कर्म कहते है ।

व्युत्सृष्ट शरीरता शरीर से ममत्व का त्याग करना व्युत्सृष्ट शरीरता है ।

व्यक्त दोष अपने अंजुली पर से अन्न, दूध, रस आदि को अथवा अरुचिकर वस्तु को नीचे गिराते हुये आहार ग्रहण करना।

व्यसन बुरे विषयों में लवलीन होना व्यसन है ।

व्यवच्छेद निराकरण या निवृत्ति करना व्यवच्छेद है ।

व्यामोह पुत्र कलत्र मित्रादि का स्नेह व्यामोह हैं ।

वारुणी धारणा अपने आत्मा पर जल पड़ता हुआ विचारे कि यह जल बची हुई रज को धो रहा है । ऐसा सोचना जल धारणा है ।

विरत महाव्रती साधु (प्रमत्त-अप्रमत्त)

विरह काल अन्तर विच्छेद के समय प्रमाण को ही विरह काल कहते है।

विरागपना अनिच्छापना ।

वीरमरण धैर्य और उत्साह के साथ भेद विज्ञान पूर्वक होनेवाले मरण को वीर मरण की संज्ञा दी है ।

विराग विचय धर्मध्यान वैराग्य की अभिवृद्धि के लिये संसार, शरीर और भोगों की असारता का चिंतन विराग विचय धर्मध्यान है ।

विरता विरत जो १२ व्रतों से सम्पन्न है वह गृही विरताविरत कहा जाता है । देशव्रती ।

विरोधी कर्म घातियां कर्म ।

वारुणीपायी दोष मदिरापायी के समान झू[illegible] करना ।

वैरात्रिक स्वाध्यायकाल दो घड़ी पहिले [illegible] काल है ।

[illegible] जो दुष्[illegible] शत्रुओं [illegible] अ[illegible] पर उनसे [illegible] की, अप[illegible] देश की रक्षार्थ [illegible] न होने पर उन[illegible] मार कर भगाने में होती है ।

विराधना [illegible] ।

वीर पुरुष जो महात्मा परीषहों को जीतने में वीर है, इन्द्रियों के निरोध में

	शूर है, कषायों के विजय में पराक्रमी है उन्ही को बुद्धि मानो ने वीर पुरुष कहा है ।
विरुध्द	विपक्ष ।
वैराग्य की माता	१२ (बारह) भावनायें।
विलोप	राज्यातिक्रम विरुद्ध राजकीय नियमों का उल्लंघन करना।
विविक्त शय्यासन तप	ब्रह्मचर्य, ध्यान, स्वाध्याय आदि की सिद्धि के लिये एकान्त स्थान पर शयन करना तथा आसन लगाना विविक्त शय्याशन तप है । अर्थात जो मुनि राग और द्वेष को उत्पन्न करनेवाले आसन शय्या वगैरह का परित्याग करता है वह विविक्त शय्यासन है ।
विवेक	अन्न पान और उपकरण आदि के मिल जाने पर उनका त्याग कर देना "विवेक" है ।
वावदूक	पदार्थो को सूक्ष्मता से समझने वाला।
विवृत	खुला हुआ ।
विशुद्धमति	निर्मल बुद्धि धारी ।
विशुद्ध	मंद कषाय रूप ।
विशुद्धिलब्धि	परिणामो में प्रति समय विशुद्धि की लब्धि को विशुद्धिलब्धि कहते है ।
विशुद्धता	मंद कषाय को विशुद्धता कहते है ।
वशीत्व	समस्त जीवों को वशीभूत करने कि सामर्थ्य ।
वंशपत्र योनि	जो योनि बांस के पत्ते के समान लम्बी हो उसको वंशपत्र योनि कहते है । इसमें साधारण पुरुष उत्पन्न होते है ।
वशीत्व विक्रिया ऋद्धि	जीव समूह को वशी भूत करने वाली ऋद्धिवशीत्व विक्रिया ऋद्धि है ।
विशेष गुण	जो गुण सर्व द्रव्यों में न मिले वह विशेष गुण है ।
विशेष धर्म	जो धर्म सब द्रव्यों में न पाया जाय किंतु कुछ में पायाजाय उसे विशेष धर्म कहते है ।
विशेषग्राही	खण्डग्राही ।
विशेष तत्वार्थ श्रद्धान	जीव अजीवादिक सप्त तत्वों को विशेषता से जानकर श्रद्धान करना ।
वासुदेव	नारायण ।
विसदृश	असमान ।
विस्तार सम्यक्त्व	तत्व केवि [illegible] विवेचन के श्रवण से [illegible]
वस्तु	द्रव्य की अपेक्षा से वस्तु नित्य है और [illegible] तीर्थकअपेक्षा से क्षणिक (अनित्य) है ।

वस्तु के नाम	भाव, पदार्थ, समय, धन, तत्व, वित्त, वसु, द्रव्य, द्रविण, अर्थ आदि सब वस्तु के नाम है ।
वस्तुत्व गुण	द्रव्य का वह गुण जिसके कारण वह कोई न कोई अर्थ क्रिया करता रहे, जैसे घट की क्रिया जल धारण ।
विस्मरण	निर्धारित सीमा को भूल जाना । सामायिक में एकाग्रता का अभाव होना, मंत्र, जाप, और सामायिक पाठ को भूल जाना ।
विसंयोजना	अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ का प्रत्याख्यान आदि शेष कषायो में परिणमित हो जाना विसंयोजना है ।
विसंयोजन	अन्य प्रकृति रूप ।
वैस्रासिक	जो शब्द स्वभाव से ही होता है उसे वैस्रसिक कहते है ।
विस्रसोपचय	कर्म और नो कर्म के प्रत्येक परमाणु के साथ जीवराशि से विस्र सोपचय रूप परमाणु भी सम्बद्ध है, किंतु कर्म रूप या तो कर्मरूप होने के लिये उम्मीदवार है उन परमाणुओं को विस्रसोपचय कहते है ।
वासर भुक्त	दिन का भोजन ।
वसा	अपक्व मांस ।
विवक्षा	कहने की इच्छा ।
वार्षिक प्रतिक्रमण	आषाढ़ मास के अन्त में चतुर्दशी या पूर्णिमा के दिन वार्षिक प्रतिक्रमण किया जाता है ।
विषयानुपेक्षा	विषयों से उदासीन न होना ।
विषमव्याप्ति	एक तरफा के सहचर्य नियम को विषमव्याप्ति कहते हैं ।
वृष्येष्ट रस त्याग	इन्द्रिय लालसा बढ़ानेवाले कामोद्दीपक पदार्थों का सेवन नहीं करना वृष्येष्ट रस त्याग है ।
वृष	धर्म ।
वृषभ	प्रधान ।
विहायोगति नामकर्म	जिस कर्म के उदय से भूमि का आश्रय लेकर या बिना उसका आश्रय लिये भी जीवों का आकाश में गमन होता है वह विहायोगति नाम कर्म है । इस कर्म के उदय से जीव की अच्छी या बुरी चाल होती है ।
विज्ञान	विशेष विचारना-विशिष्ट ज्ञान।
विक्षेपणी	स्व समय की स्थापना ।
विक्षेपिणी कथा	जिस कथा में जैन मत के सिद्धांतो का और पर मत का निरुपण है उसको विक्षेपिणी कथा कहते है ।

विक्षिप्त	क्षोभरूप ।

श

शोक	इष्ट वियोग ।
शंका	वीतराग जिनेन्द्र प्रतिपादित तत्व में अश्रद्धा मूलक शंका करना, उसे संदिग्ध दृष्टि से देखना शंका है ।
शंखावर्त योनि	'जिसके भीतर शंख के समान चक्कर पड़े हो उसको शंखावर्त योनि कहते है । इसमें गर्भ नहीं ठहरता ।
शक्तिरूप चक्षुदर्शन	चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय लब्ध्य पर्याप्तक जीवों के शक्तिरूप चक्षुदर्शन होता है ।
शिक्षा	हित का ग्रहण और अहित का त्याग जिसके द्वारा किया जा सके उसको शिक्षा कहते है ।
शुक्ल ध्यान	मन की अत्यन्त निर्मलता होने पर जो एकाग्रता होती है वह शुक्ल ध्यान है ।
शंकित अशनदोष	वह वस्तु ग्रहण करने योग्य है या नहीं इस प्रकार की शंकास्पद स्थिति में आहार ग्रहण करना ।
शौच	शुद्धि । अन्तकरण में लोभ गृध्दता के न्यून करने को तथा बाह्य शरीरादि में पवित्रता रखने को शौच कहते है ।
शुद्ध नय	जो आत्मा को बंध रहित, पर के स्पर्श रहित, अन्यत्र रहित, चलाचल रहित, विशेष रहित और अन्य के सहयोग रहित अवलोकन करता है वह शुद्धनय (निश्चय नय) है ।
शुद्ध	कषाय रहित रूप ।
शुद्ध निश्चय नय	अभेद वृत्ति से । जिसका लक्ष केवल शुद्ध गुण पर्याय व द्रव्य पर हो वह शुद्ध निश्चय है ।
शुद्ध दीक्षा	जो महात्मा १२ तप, ५ महाव्रत, मूलगुण और उत्तरगुणों से शुद्ध है, संयम व सम्यग्दर्शन गुणों से निर्मल है व आत्मिक गुणों से शुद्ध है वह शुद्ध दीक्षा है ।
शुद्ध जीव द्रव्य के नाम	परम पुरुष, परमेश्वर , परम ज्योति, पर ब्रह्म, पूर्ण, परम प्रधान, अनादि, अनंत, अव्यक्त, अविनाशी, अज, निर्द्वन्द, मुक्त, मुकुंद, निगम, अमलान, निराबाध, निरंजन, निर्विकार, निराकार, सुज्ञान, सर्वदर्शी संसार शिरोमणी, सर्वज्ञ, सिद्ध, स्वामी, शिव, धनी, नाथ, ईश, जगदीश, भगवान, ये सब शुद्ध जीव द्रव्य के नाम है ।

शुद्धत्व शक्ति युक्त वीतरागता रूप ।

शुद्धोपयोग	पाप, पुण्य के भाव को छोडकर शुद्ध चिदानंद आत्मा का ध्यान करना, शुद्धोपयोग है । निरुपराग परिणाम शुद्धोपयोग है । यह ध्यानात्मक परिणति है यह वीतराग श्रमणों को ही होता है ।
शुद्धोपलब्धि रूप से	ज्ञान चेतना रूप से ।
शुद्धोपयोगी	शुभ और अशुभ राग द्वेष की परिणति से रहित ज्ञान दर्शन की अवस्था को शुद्धोपयोगी कहते है ।
शुद्धोपयोग के नामान्तर	सर्व परित्याग, परम उपेक्षा संयम, परम शुक्ल ध्यान, वीतरागचारित्र आदि शुद्धोपयोग के ही नामान्तर है ।
शून्यागार	सूने स्थान में ठहरना ।
शून्यागारावास	पर्वत की गुफा, वृक्ष के कोटर आदि में निवास करना शून्यागारावास है ।
शांतिपाठ में	शांति भक्ति का पाठ प्रचलित है ।
शतार चतुष्क	तिर्यंच गति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु तथा उद्योत, इन चार का नाम शतार चतुष्क है ।
शतावधान	सौ कामों को एक साथ करना । यह आत्मशक्ति का कार्य है ।
शब्द	मर्यादित क्षेत्र से बाहर के व्यक्ति के शब्दोच्चारण पूर्वक अपनी और आकर्षित करना वह शब्द है ।
शब्दाचार	मूल ग्रंथ के शब्दों, स्वर, व्यंजन और मात्रओं को शुद्ध उच्चारण पूर्वक पढ़ना ।
शब्द नय	लिंग, वचन, कारक, काल, पुरुष आदि के भेद से अर्थ को भेद रूप ग्रहण करने वाला नय शब्द नय है ।
शब्द-दोष	शब्द बोलते हुवे वन्दना करना अथवा वन्दना करते समय बीच में बातचीत करते जाना ।
शब्दानुकुलित दोष	जब अन्य साधु पाक्षिक आदि दोषों की विशुध्दि करते हो, उस समय कोलाहल के मध्य गुरु के समक्ष अपने दोषों का निवेदन करना शब्दानुकुलित दोष है ।
शबरी दोष	भिल्लनी के समान गुह्य अंग को हाथों से ढककर या जंघा से ब्रंधन पीड़ित करके खड़े होना ।
शब्दानुपात	मर्यादा के बाहर बात कर लेना ।
शुभ आश्रव	मन्द कषाय सहित योग से जो आश्रव होता है वह शुभाश्रव है ।
शुभ तैजस	वह तेज जो महामुनियों के दाये कंधे से बाहर निकलकर अपने क्षेत्र में फैले रोग आदि को शांतकर अपने मूल शरीर में प्रविष्ट हो

	जाता है वह शुभ तैजस है ।
शुभ नाम कर्म	शरीर के अवयवों को सुन्दर बनाने वाला कर्म शुभनाम कर्म है ।
शुभोपयोग	धर्मानुराग युक्त परिणाम शुभोपयोग कहलाता है । अर्थात पूजा, शास्त्र पठन, दान का भाव होना शुभोपयोग है ।
शमभाव	मन्दकषाय रूप परिणाम ।
शरीर नामकर्म	शरीर की रचना करने वाले कर्म को शरीर नामकर्म कहते है ।
शरीर संघात नामकर्म	निर्मित शरीर के परमाणुओं को परस्पर छिद्र रहित बनाकर एकीकृत करनेवाले कर्म को शरीर संघात नाम कर्म कहते है ।
शरीर बंधन नामकर्म	शरीर का निर्माण करनेवाले पुद्गलों को परस्पर बांधनेवाला कर्म शरीर बंधन नाम कर्म है ।
शरण	जो सहारा देता है उसे शरण कहते है ।
शिरः प्रकंम्पित दोष	कायोत्सर्ग करते समय सिर हिलाना ।
शल्य	जिनके शल्य (दोष) नहीं वह व्रती है शल्य ३ प्रकार का १) माया २) मिथ्यात्व ३) निदान
शील	गृहीत व्रतों की रक्षा करना शील कहलाता है ।
शिल्प कर्म	धोबी, नाई, सुनार, कुम्हार आदि का कार्यकर आजीविका चलाना ।
शील व्रतेष्वनतिचार भावना	५ व्रतों और ७ शीलों को निर्दोष पालन करना ही शीलव्रतेष्वनतिचार या अनतिचार शीलव्रत भावना है ।
शलाका पुरुष	तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि प्रसिद्ध पुरुषों को शलाका पुरुष कहते है ।
श्वेत	सफेद ।
श्वभ्रपूरण वृत्ति	मुनिराज अपने उदर के गर्त को जैसा कुछ अन्न मिल गया उससे भर देते है । मिष्ठ भोजन की इच्छा नहीं रखते है यह श्वभ्रपूरण वृत्ति है ।
शिवपद श्री	मोक्षपद की लक्ष्मी ।
शास्त्राभ्यास के अंग	शब्द या अर्थ का बांचना या सीखना, सीखाना, उपदेश देना, विचारना, सुनना, प्रश्न करना, समाधान जानना, बारम्बार चर्चा करना, इत्यादि अनेक अंग है ।
शास्ता	हितोपदेशक ।
शाश्वत	सदा ।
शास्त्र	(सच्चे आगम का लक्षण) १) जो सर्वज्ञ वीतराग का कहा हुआ हो । २) किसी वादी प्रतिवादी द्वारा उल्लंघन न किया जा सके । ३) दृष्ट अर्थात प्रत्यक्ष और इष्ट अर्थात अनुमान द्वारा जिसमें विरोध

नहीं आवे । ४) तत्व अर्थात जैसा वस्तु का स्वरूप है वैसा कथन उपदेश करनेवाला हो । ५) सर्व जीवों का हितरूप हो । ६) कुमार्ग अर्थात मिथ्या मार्ग का निषेध करने वाला हो ।

शैक्ष्य मुनि — जो सिद्धांत शास्त्रो के पढ़ने में तत्पर है और मोक्ष मार्ग में लगे हुवे है उनको शैक्ष्य कहते है । अध्ययनशील मुनिका नाम शैक्ष्य है ।

शिक्षाव्रत — जिससे मुनि बनने की शिक्षा /प्रेरणा मिलती है उसे शिक्षाव्रत कहते है । अर्थात जिनसे मुनिव्रत पालन करने की शिक्षा मिले ।

शाश्वत धाम — मोक्षस्थान या सिद्ध शिला ।

शशाक — खरगोश ।

स

सकल जिन — जिसने घातियां कर्मो का नाश किया है वो अरिहंत और सिद्ध सकल जिन है ।

सकंप — चलायमान ।

संक्रम — संयोग ।

सकल प्रत्यक्ष — जो अविनाशी (केवल) ज्ञान है वह सकल प्रत्यक्ष है ।

सकलेन्द्रिय — पंच इन्द्रिय जीवों के पास स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पांचो इन्द्रियां ही सकलेन्द्रिय कहलाती है ।

सकल संयम — अनुदय प्राप्त सर्व घाति स्पर्धको की सत्तारूप अवस्था को सदवस्था रूप उपशम कहते है अर्थात सकल संयम ।

सकल चारित्र — मुनियों के व्रतों को सकल चारित्र कहते है। सकल परिग्रहों से विरक्त ।

सकल दत्ति — अपने वंश के निर्वाह के लिये अपने पुत्र अथवा दत्तक पुत्र को अपना धन और धर्म समर्पण करना ।

सकलेन्द्रिय जीव — पंचेन्द्रिय जीवों को सकलेन्द्रिय जीव कहते है जैसे मनुष्य, देव, नारकी, पशु आदि ।

सकल परमात्मा — शरीर सहित अर्थात अरिहंत देव ।

सकाम निर्जरा — जो कर्म देकर नष्ट होते है उसे सकाम निर्जरा कहते है ।

साकार प्रत्याख्यान — सर्वतोभद्र कनकावली आदि उपवासों को करना यह भेद सहित होने से साकार प्रत्याख्यान है ।

साकार उपयोग — जिसमें पदार्थ यह घट है, पट है इत्यादि विशेष रूप से प्रतिभासित हो इसी को साकार उपयोग (ज्ञान) कहते है ।

स्कंधबीज — जिन वनस्पतियों का बीज उनका स्कंध भाग होता है उन्हे स्कंध बीज कहते है । जैसे सलाई, पलाश वगैरह ।

सकल विषय विषयात्मा — समस्त पदार्थ है विषय भूत जिनके, अर्थात सब पदार्थों के ज्ञाता।

स्कंध — अनेक परमाणुओं के योग से बनी पुद्गल परमाणुओं की संयुक्त पर्याय स्कंध कहलाती है । अनेक परमाणुओं के बंध को स्कंध कहते है ।

सुखानुबंध — भोगे हुये इन्द्रिय सुखों को याद करना ।

सुखाभास — विषय सुख ।

सुखदुखोपसंपत समाचार — सुख दुख युक्त पुरुषों को औषध, आहार, वस्तिका आदि प्रदानकर और कहना कि मैं और मेरी वस्तुएं आपकी ही है । वह सुख दुखोपसंपत समाचार है ।

सुखावहन — क्षुधादि से पीड़ित साधु को उत्तम कथा आदि के द्वारा शांत करके सुखी करते है वे सुखावह गुण के धारी है ।

सागार धर्म — श्रावक के धारण करने योग्य धर्म को सागार धर्म कहते है ।

संघकर मोचन दोष — यदि मैं संघ को वंदना रूपी कर भाग नहीं दूंगा तो संघ मेरे ऊपर रूष्ट होगा, ऐसे भाव से वन्दना करना ।

संघात नाम कर्म — जिसके उदय से औदारिक आदि शरीरों के परमाणु आपस में मिलकर छिद्र रहित बंधन को प्राप्त होकर एक रूप हो जाय उसे संघात नाम कर्म कहते है ।

सचित्त सम्मिश्र — त्यागे हुवे सचित्त को अचित्त में मिलाकर खाना ।

सचित्त विरत प्रतिमा — हरे साग - सब्जी, फल पुष्प आदि वनस्पति के किसी भी अंग को अग्नि से संस्कारित करने अथवा यंत्र से पेले बिना नहीं खाना सचित्त त्याग प्रतिमा है ।

सचित्त — जीव सहित पदार्थों को सचित्त कहते है । सूखने से, अग्नि पर पकने से, कटने छटने से अथवा नमक आदि पदार्थों से संसक्त होने प्रर वनस्पति, जल आदि पदार्थ अचित्त हो जाते है । व्रती लोक सचित्त पदार्थों का सेवन नहीं करते ।

सचित्त पूजा — प्रत्यक्ष उपस्थित समवशरण में विराजमान जिनेन्द्र भगवान और निर्ग्रंथ गुरु का यथा योग्य पूजन करना सचित्त पूजा है ।

सचित्त निक्षेप — सचित्त पत्र, भूमि आदि पर आहार रखना जैसे केले कमल के पत्ते ।

सचित्त अपिधान — देय आहार को सचित्त पत्रादि से ढकना (केले और कमल के पत्ते)

सचित्त सम्बन्ध — त्यागे हुवे सचित्त से मिली हुई वस्तु को खा लेना ।

सज्जाति — कुल और जाति इन दोनों की विशुद्धि को सज्जाति कहते है ।

सज्जातित्व	देश कुल जाति आदि में शुद्ध उत्तम कुल में सम्यग्दर्शन के साथ जन्म लेना सज्जातित्व है ।
स्तब्ध दोष	आठ प्रकार के मद में से किसी के वश हो जाना ।
स्तव आवश्यक	तीर्थंकरों के गुणों का स्तवन करना स्तव आवश्यक है ।
स्तव	जिसमें सर्वांग संबंधी अर्थ विस्तार सहित अथवा संक्षेपता से कहा जाय ऐसे शास्त्र को स्तव कहते है ।
सत्ता	कर्म बंध के बाद और फल देने के पूर्व बीच की स्थिति को सत्ता कहते है ।
सत्	जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनो से युक्त है वह सत् है अर्थात सम्यक प्रकार से । सत याने द्रव्य ।
सत् अहेतुक तत्व	जो अनादि अनन्त है, स्वतःसिद्ध है, नित्य है, बिना किसी कारण के है वह सत् अहेतुक तत्व है ।
स्तुति	चौबीस तीर्थंकरो के गुणों का स्तवन, कीर्तन करना स्तुति है ।शास्त्र के एक अंग का अर्थ हो वह भी स्तुति है ।
सत्य प्रवाद पूर्व	इसमें शब्द उच्चारण, दो इन्द्रिय आदि प्राणी, वचन गुप्ति के संस्कार एवं १० प्रकार के सत्यवचन और असत्यवचन का वर्णन है । यह १४ पूर्व में से ६ ठा पूर्व है ।
सातिशय अप्रमत्त	प्रमाद पर पूर्ण विजय प्राप्त कर स्थायी रूप से अप्रमत्त अवस्था प्राप्त करने वाले साधक सातिशय अप्रमत्त है ।
स्तेय	चोरी ।
स्तेन नियोग	चोरी करने वालों की सहायता करना । जिसे स्तेन प्रयोग कहते है ।
स्त्यान गृद्धिकर्म	इसके उदय से ऐसी प्रगाढ़तम नींद आती है, जिससे व्यक्ति दिन में या रात्रि में उठना, बैठना, चलना आदि अनेक क्रियायें निद्रावस्था में ही सम्पन्न कर लेता है ।
सातिशय पुण्य	सम्यग्दृष्टि का पुण्य सातिशय पुण्य कहलाता है अतएव मोक्ष का कारण है ।
सत्य	सत्य का सामान्य अर्थ अस्तित्व है, इसका अर्थ मनोबल भी है ।
स्तेनित दोष	आचार्य आदि से छिपाकर वंदना करना या कोठरी आदि के भीतर छिपकर वंदना करना ।
स्तन दृष्टि दोष	अपने स्तन भाग पर दृष्टि रखना ।
स्तंभ दोष	स्तंभ का सहारा लेकर अथवा स्तंभ के समान शून्य हृदय होकर कायोत्सर्ग करना ।

सत्य महाव्रत — राग-द्वेष, मोह, क्रोध आदि दोषो से युक्त असत्य वचनों का त्याग कर देना और ऐसा सत्य भी नहीं बोलना कि जिससे प्राणियो का घात हो जावे, वह सत्य महाव्रत है ।

साति प्रयोग माया — धन के विषय में असत्य बोलना, किसी की धरोहर का कुछ भाग हरण कर लेना, साति प्रयोग माया है ।

सतत — निरन्तर ।

साता वेदनीय कर्म — जिस कर्म के उदय से प्राणी को अनुकूल विषयों के संयोग से सुख का अनुभव होता है वह साता वेदनीय कर्म है ।

स्थिति बंध — बंधे हुवे कर्म जब तक अपना फल देने की स्थिति मे रहते है तब तक की काल मर्यादा को स्थिति बंध कहते है ।

स्थिति — बद्ध कर्मो का आत्म प्रदेशों के साथ जुड़े रहने की कालावधि स्थिति है ।

सार्थक — प्रयोजन भूत ।

स्थिति करण अंग — काम क्रोधादि द्वारा धर्म से विचलित अपने को और पर को धर्म में लगाना स्थिति करण अंग है ।

स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान — (कषाय स्थान) स्थिति बंध के कारण कषाय के तरतम स्थानों को स्थिति बन्धाध्यवसाय स्थान कहते है ।

स्थिति स्थान — बंधनेवाली कर्म की स्थिति के भेदों को स्थिति स्थान कहते है ।

स्थिति भोजन — खड़े होकर अपने ही कर पात्र में आहार करना ।

स्थावर नामकर्म — पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति आदि एकेन्द्रियों में उत्पन्न करानेवाला कर्म स्थावर नाम कर्म है ।

स्थावर जीव — (एकेन्द्रिय) पृथ्वीकायिक,जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पति कायिक ।

स्थविर — जिनसे शिष्य के आचरण स्थिर होते है उन्हे स्थविर मुनि कहते है ।

स्थविर कल्पी साधु — वे शिष्य समुदाय के साथ रहते है जिनसें शिष्य के आचरण स्थिर होते है । वे सभा में बैठकर धर्मोपदेश देते है तथा सुनते है । वनवासी, नग्न और २८ मूलगुण के धारक होते है । सर्व परग्रह के त्यागी, वैरागी होते है ।

स्थविर साधु — बाल, वृद्ध, आदि मुनि को सर्वज्ञानुकूल उपदेश देनेवाले स्थविर साधु कहलाते है ।

स्थलगता चूलिका — इसमें थोड़े ही समय में अनेक योजन गमन करने का वर्णन है ।

स्थानांग — इसमें एक, दो, तीन आदि एकाधिक स्थानों में षड़ द्रव्य आदि का

	निरुपण है ।
स्थान प्रकृति	एक जीव के एक काल में जितनी प्रकृतियों की सत्ता पाई जाय उनके समूह का नाम स्थान है ।
स्थिर नामकर्म	शरीर के अस्थि, मांस, मज्जा आदि धातु, उपधातुओं को यथास्थान स्थिर रखनेवाले कर्म को स्थिरनाम कर्म कहते है ।
स्थूलकायिक जीव	जिन जीवों का पृथ्वी, जल, आग और वायु से प्रतिघात होता है उन्हे स्थूल कायिक जानो ।
स्थूल दृष्टि	संयोगी दृष्टि ।
स्थूल-सूक्ष्म	जो नेत्रोद्वारा देखा जा सके, किंतु पकड़ में न आसके जैसे छाया, प्रकाश ।
स्थापना जिन	जिनेन्द्र देव की प्रतिमा स्थापना जिन है ।
स्थापना सत्य	किसी वस्तु में उससे भिन्न वस्तु के समारोप करनेवाले वचन को स्थापना सत्य कहते है ।
स्थूल-स्थूल	जो पदार्थ छिन्न भिन्न कर देने पर आपस में जुड़ नही सकते तथा जिन्हे एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से ले जाया सकता है जैसे पत्थर, लकड़ी, धातु आदि ठोस पदार्थ।
स्थूल	जिन्हे एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया तो सकता है किंतु छिन्न भिन्न करने पर जो स्वयं जुड़ जाते है जैसे दुध, पानी, तेल ।
स्थूल ऋजु सूत्र नय	द्रव्य की व्यंजन पर्यायो को विषय बनाता है ।
स्थापना निक्षेप	मूल अर्थ से शून्य वस्तु को उसी अभिप्राय से स्थापित करना स्थापना निक्षेप है ।
स्थापित दोष	भोजन को बर्तन से निकालकर अपने अथवा अन्य के घर में रखना अथवा भोजन को उसके मूल पात्र से निकाल कर अन्य पात्र में रख देना ।
स्थापना सामायिक	शुभाकार युक्त और अशुभाकार युक्त प्रतिमाओं में राग-द्वेष नहीं करना स्थापना सामायिक है ।
स्थापना स्तव	कृतिम, अकृतिम प्रतिमाओं की स्तुति करना स्थापना स्तव है ।
स्थापना प्रतिक्रमण	सराग स्थापना से अपने परिणाम हटाना स्थापना प्रतिक्रमण है ।
सद्भूत व्यवहार नय	यह वस्तु के विशेष गुणों का विवेचन करता है इसलिये यह यथार्थ है ।
सादि	जिसका छुटकर पुनःबंध हो ।
सिद्ध भगवान के विभिन्न नाम	सिद्ध परमदेव, परम पवित्र, अमूर्तिक चरम शरीरवाले, परमात्मा देव, निराकुलित-अनुपम बाधा रहित, अखण्ड-अजर- अविनाशी

	है । निर्मल है, चेतन स्वरूप है, देवाधिदेव सिद्ध परमेष्ठी, सिद्ध महाराज, सिद्ध भगवान, जन्म मरण नहीं, शरीर नहीं, विनाश नहीं- संसार विषै गमन नहीं ।
सिद्ध परमेष्ठी	जिन्होंने आठ कर्मो को नष्ट कर दिया है और जो निराकार लोक के अग्र भाग में विराजमान है उन्हे सिद्ध परमेष्ठी कहते है । जो सबसे बड़े परमेष्ठी है ।
सिद्धकी प्रतिमा	बिना चिन्ह व प्रातिहार्य प्रतिमा सिद्धकी होती है ।
सिद्ध समान	आठ गुण सहित ।
सिद्ध स्थान	मोक्ष ।
सद्‌गृहस्थत्व	सज्जातित्व के बाद वयस्क होने पर गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर श्रावक धर्म का निर्मल आचरण करना सद्‌गृहस्थत्व है।
सुदृष्टि	सम्यग्दर्शन ।
सुद्धोपयोग	वीतराग परिणति ।
सदंश अंतराय	आहार के समय कुत्ता आदि के काटने पर ।
सिद्धि	संसार परिभ्रमण से भयभीत मुमुक्षुओं को उन चार आराधनाओं को पूर्ण बनाना वह सिद्धि है ।
साधक अवस्था	अरिहंत, साधु, श्रावक, सम्यक्तवी आदि अवस्था साधक है । पूर्व अवस्था साधक है ।
साधारण नाम कर्म	जिस कर्म के उदय से अनन्त जीवों को एक ही शरीर प्राप्त हो वह साधारण नाम कर्म है ।
साधारण वनस्पति	जिस वनस्पति में अनन्त जीव पाये जाते है एवं उसके स्वामी भी अनन्त जीव होते है उसे साधारण वनस्पति कहते हैं । इसमें एक शरीर अनन्त जीवों का पिंड होता है ।
सधर्मा विसंवाद	अपने उपकरणों में मेरे तेरे का भाव रखकर अन्य साधुओं से विवाद नहीं करना सधर्मा विसंवाद है ।
साधर्मी अविसंवाद	साधर्मी धर्मात्माओं से विसंवाद या झगड़ा न करना ।
साधु के अनेक नाम	साधु, संयमी, श्रमण, मुनि, यति, त्यागी, तपस्वी, अनगार, अतिथि, महाव्रती, निर्ग्रंथ, दिगम्बर ।
साधु	जो साधु त्रिकाल योग धारण करते है और मोक्ष की सिद्धि में लगे रहते है उनको साधु कहते है । चिर दीक्षित मुनि साधु है ।
साधु परमेष्ठी	जो २८ मूलगुणों के धारी हो, ज्ञान, ध्यान, तप में लीन हो, आरम्भ परिग्रह से रहित हो और आत्म साधना में लीन रहते है ।

साधु के अपर नाम	श्रमण, संयत, ऋषि, मुनि, साधु, वीतराग अनगार भदंत दंति व यति ।
साध्य भाव के पर्याय वाची नाम	साध्य भाव, उपेय भाव, मोक्ष भाव, तीर्थफल भाव, पुरुषार्थ की सिद्धि ।
साधन भाव के पर्यायवाची नाम	साधन भाव, उपाय भाव, मोक्षमार्ग, तीर्थ, पुरुषार्थ सिद्धिउपाय ।
साधना	अभ्यास ।
साध्य अवस्था	सिद्ध अवस्था साध्य है । उत्तर अवस्था साध्य होती है ।
स्नातक मुनि	केवलज्ञानी अरिहंत परमात्मा को स्नातक मुनि कहते है ।
स्निग्ध	चिकना ।
संवेग	धर्म के प्रति अनुराग, अत्यन्त हर्ष और उत्साह बना रहना और संसार से सतत भीति और मोक्ष की अभिलाषा संवेग है ।
संयम	प्राणियों और इन्द्रियों के विषय में अशुभ प्रवृत्ति का त्याग करना संयम है ।
संभावना सत्य	असंभवता का परिहार करते हुए वस्तु के किसी धर्म का निरूपण करने में प्रवृत वचन को संभावना सत्य कहते है ।
संयम मार्गणा	पांच व्रतो को धारण करना, पांच समितियों का पालन करना, क्रोधादि कषायों का निग्रह करना, मन, वचन और कायरूप तीन दण्डों का त्याग करना, पांच इन्द्रियों का निरोध करना संयम कहलाता है। छठे गुणस्थान से १४ वे गुणस्थान तक संयम मार्गणा है ।
संज्ञी मार्गणा	जो जीव मन के अवलम्बन से शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलाप को ग्रहण करता है उसे संज्ञी मार्गणा कहते है ।
संयमा संयम	सम्यग्दर्शन के साथ पांच पापों के एक देश त्याग को संयमासंयम कहते है ।
संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव	मन सहित जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव कहलाते है ।
संयुक्त	राग सहित ।
संहरण	अपहरण ।
संमूर्छन जन्म	अपने शरीर पुद्गल परमाणुओं का बिना रज वीर्य के अवयवों की रचना होना सम्मूर्छन जन्म कहलाता है ।
संज्वलन कषाय	जिस कषाय के उदय से यथाख्यात चारित्र का घात होता है उसे संज्वलन कषाय कहते है । चारित्र की पूर्णता नहीं होने देवे ।
संज्ञा	अभिलाषोओं, इच्छाओं को संज्ञा कहते है । इसके चार भेद है ।

	१) आहार २) भय ३) मैथुन ४) परिग्रह । वेदनीय अथवा मोहनीय कर्म के उदय से प्राणी में आहारादि की प्राप्ति के लिये जो स्पष्ट और अस्पष्ट इच्छा, व्यग्रता, सक्रियता बनी रहती है, वह संज्ञा है ।
संवेगिनि	धर्म का फल ।
संस्थान विचय	लोक से स्वरूप का विचार करना संस्थान विचय है ।
संभिन्न श्रोतृत्व बुद्धि	दशों दिशाओं के मनुष्य तिर्यंचो की वाणी को एक साथ सुनकर प्रत्युत्तर देनेवाली बुद्धि संभिन्न श्रोतृत्व बुद्धि है ।
सनिमंत्रण	पुस्तक आदि की इच्छा होने पर गुरु आदि से विनय पूर्वक याचना करना सनिमंत्रण है ।
संस्थान नामकर्म	शरीर को विविध आकृतियाँ प्रदान करनेवाला कर्म संस्थान नाम कर्म है ।
संस्थान	शरीर का आकार ।
संवर	आश्रव का निरोध, कर्मो का रूकना संवर है ।
संवर के नाम	सम्यकत्व, देशव्रत, महाव्रत, कषायो का जीतना और योगो का अभाव ।
संवर भावना	शुभाशुभ कर्म न आवे, ऐसा चिंतवन करना संवर भावना है ।
संवर तत्व	आश्रव (कर्मो) का रूकना या आये हुवे कर्मो को रोकना संवर तत्त्व है ।
संसार	जीव और अजीव का योग ही संसार है ।
संसारी जीव	कर्म कलंक से जो लिप्त है, स्व स्वभाव को जिन्होंने प्राप्त नहीं किया है , गुणस्थान, मार्गणा स्थान तथा जीवस्थान में जो स्थित है वे संसारी जीव कहे गये है ।
संसार के हेतु	आश्रव और बंध संसार के हेतु है ।
संसार भावना	चारों गति में जीवन को दुःख ही दुःख है (इस तरह) पंच परिवर्तन पूर्ण करता है । संसार सब तरह से असार है, उसमें जरा भी सुख नहीं है ।
संप्रतर्क	विचार कर ।
संपोषक	भले प्रकार पालन करनेवाला ।
संपुटों	उत्पत्ति स्थानों ।
संन्यास	धर्म समझते हुवे आत्म सुधार के लिये शरीर और कषायों को कृष करने को सन्यास या समाधि अथवा सल्लेखना कहते है ।
संशय	विरुध्द अनेक कोटि का अवलम्बन करनेवाले ज्ञान को संशय

	कहते है ।
संशय मिथ्यात्व	तत्व और अतत्व के बीच संदेह में झूलते रहना ।
संशय वचनी भाषा	यह बलाका है अथवा पताका ऐसे संदिग्ध वचनों को संशयी वचनी भाषा कहते है ।
सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष	सांव्यावहारिक का अर्थ - व्यवहार सापेक्ष ।
संहनन नामकर्म	अस्थिबंधनो में विशिष्टता को उत्पन्न करनेवाले कर्म को संहनन नाम कर्म कहते है ।
सान्तर सिद्ध	कुछ समय के अन्तराल से सिद्ध होनेवाले सिद्ध सान्तर सिद्ध कहलाते है ।
सान्तर मार्गणा	जिनमें विच्छेद पड़ जाता है उनको सान्तर मार्गणा कहते है।
संहरण सिद्ध	अन्य क्षेत्र से जन्मे हुवे जीवों को अपहरण करके अन्य क्षेत्र में ले जाने पर यदि वे उसी क्षेत्र से सिद्ध होते है वे संहरण सिद्ध कहलाते है ।
संव्यवहरण दोष	श्रद्धा या भयवश घबराट में वस्त्र, पात्र आदि को बिना विचारे खींचकर झटपट आहार देना, संव्यवहरण दोष है ।
संयोजना दोष	परस्पर विरूद्ध उष्ण-शीत, स्निग्ध-रूक्ष, आदि पदार्थों को मिलाकर आहार करना ।
संयोग दृष्टि	निमित्त दृष्टि ।
संवेगिनी कथा	ज्ञान, चारित्र, तप व वीर्य इनका अभ्यास करने से आत्मा में कैसी कैसी अलौकिक शक्तियां प्रगट होती है इनका खुलासेवार वर्णन करनेवाली कथा को संवेगिनी कथा कहते है ।
संश्लेष	दुध और जल का सम्बन्ध (परस्पर में) संश्लेष है ।
संसरण	परिभ्रमण ।
सान्तर	अन्तरसहित ।
सुनय	एक दूसरे के विषय को मुख्य-गौण भाव से स्वीकार करनेवाला नय सुनय कहलाता है ।
संवित्ति	अनुभव ज्ञान ।
संवेद्य	संवेदन करने योग्य ।
संवृत्त	ढका हुआ ।
संक्रमण	का अर्थ परिवर्तन । कर्म का एक भेद अपने सज्जातिय दूसरे भेद में बदल सकता है । अवान्तर प्रकृतियों का यह अदल बदल संक्रमण कहलाता है ।
संक्लेश	तीव्र कषाय का रूप ।

संख्या	(सिद्ध अनुयोगद्वार) एक समय में कम से कम एक और अधिकतम १०८ जीव सिद्ध होते है ।
संग्रह नय	अपनी जाति का विरोध किये बिना समस्त विषयों को एकरूप से ग्रहण करने वाला नय संग्रह नय है ।
संग्रहम	प्रतिग्रहण (पड़गाहन करना मुनिराज को)
संघातन कृति	विवक्षित शरीर परमाणुओ का निर्जरा के बिना जो संचय होता है उसे संघातन कृति कहते है ।
संघ	ऋषि, यति, मुनि और अनगार के समुदाय को संघ कहते है । सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप को भी संघ शब्द से कहा है ।
सैनी	मन सहित जीव ।
सापेक्ष के नामांतर	परस्पर मिथ, प्रेम, कथंचित, स्यात् किसी अपेक्षा से, दोनों के अभिन्न प्रदेश ।
स्पृष्ट	नो कर्म से छुआ हुआ ।
स्पृहा	इच्छा ।
स्पर्धक	विभिन्न वर्गणाओं का समूह स्पर्धक कहलाता है । अथवा कर्म की शक्ति क्रम से विशेष वृद्धि को प्राप्त हो ।
सोपाधिज्ञान	बद्ध ज्ञान ।
सप्त भंगी	प्रश्न के अनुसार एक ही वस्तु में प्रमाण से अविरुद्ध विधि निषेध की कल्पना ।
स्पर्श नाम कर्म	हल्का, भारी, कठोर, मधु, शीत, उष्ण तथा स्निग्ध, रूक्ष आदि से शरीर को प्रतिनियत स्पर्श उत्पन्न करानेवाला कर्म स्पर्श नाम कर्म है
सप्रतिष्ठित प्रत्येक	जिस प्रत्येक वनस्पति के शरीर में बादर निगोदिया जीवों का आवास हो उसे सप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते है ।
सप्रतिष्ठित जीव	जिन प्रत्येक जीवों के आश्रित अन्य साधारण जीव पाये जाते है वे सप्रतिष्ठित प्रत्येक जीव कहलाते है ।
सृपाटिकाव्रत	सर्प की तरह हाड़ जिसमें ।
स्पर्शन इन्द्रिय निरोध	सुखदायक कोमल स्पर्शादि में या कठोर कंकरीली भूमि आदि के स्पर्श में आनन्द या खेद नहीं करना ।
स्मृत्यनुपस्थान	सामायिक करना या सामायिक का पाठादि भूल जाना ।
सम्मति सत्य	बहुत मनुष्यों की सम्मति से जो सर्व साधारण में रुढ़ हो उसे सम्मति सत्य या संवृति सत्य कहते है ।

सुभग नाम कर्म	सौभाग्य को उत्पन्न करनेवाला कर्म सुभगनाम कर्म है या जिससे दूसरे जीवों को अच्छा लगने वाला शरीर हो उसे सुभग नाम कर्म कहते है।
समुद् घात केवली	समुद् घात में प्रवृत्त केवली भगवान ।
समयसार	शुद्धात्म तत्व का वास्तविक स्वरूप । अर्थात परमात्मा ।
समयसार के अपरनाम	सामान्य, परिणामी, जीव स्वभाव, परमस्वभाव, ध्येय, गुह्य, परम तथा तत्व ये सब समयसार के अपर नाम है ।
समयसार पाहुड़	महातत्व पाहुड़ (ग्रंथ)
समय	आत्मा या जीव ।
समय प्रबद्ध	प्रति समय बंधने वाले कर्म या नो कर्म की समस्त परमाणुओं के समूह को समय प्रबद्ध कहते है ।
सामायिक	समय आत्मा को कहते है । आत्मा के गुणों का चिंतन कर समता का अभ्यास करना सामायिक है । समता भाव का नाम सामायिक है । सम की आय करना अर्थात समस्त प्राणियों के प्रति समता धारणकर आत्म केन्द्रित होना सामायिक है ।
स्मृतिज्ञान	स्व संवेदन ज्ञान ।
स्मृत्यन्तराधान	मर्यादा को याद नहीं रखना ।
समचतुरस्र संस्थान	सुडोल शरीर ।
सामायिक प्रतिमा	पूर्व ग्रहीत सभी व्रतों के साथ तीनों संध्याओं में विधिपूर्वक सामायिक करना सामायिक प्रतिमा है ।
सामायिक अंगबाह्य	(श्रुत ज्ञान) में सामायिक का सविस्तार कथन है ।
सामायिक संयम मार्गणा	जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दुख, शत्रु -मित्र, निंदा-प्रशंसा आदि सब द्वंदो में समता रखना सामायिक है ।
सामान्य जीवद्रव्य के नाम	चिदानंद, चेतन, अलक्ष, जीव, समयसार, बुद्धरूप, अबुद्ध, अशुद्ध, उपयोगी, चिद्रुप, स्वयंभू, चिन्मूर्ति, धर्मवंत प्राणी, प्राणवंत, जन्तु, भूत, भवभोगी, गुणधारी, कलाधारी, भेषधारी, अंगधारी, संगधारी, योगधारी, योगी, चिन्मय, अखण्ड, हंस, अक्षर, आत्माराम, कर्मकर्ता, परमवियोगी, ये सब जीव द्रव्य के नाम है ।
सामान्य के नामान्तर	(स्व) चेतन, चेतना, गुण, द्रव्य ज्ञायक, सामान्य, तत्व, शुद्ध, पारिणामिक, परम पारिणामिक, कारण परमात्मा, स्वतःसिद्ध, ज्ञान, सामान्यज्ञान, जीव, सामान्य जीव, स्वभाव, अन्त स्तत्व, जीवत्व भाव, स्वभाव, अन्वय, सत्,

सामान्य धर्म	जो धर्म सब द्रव्यों में पाया जाय उसे सामान्य धर्म कहते है ।
सामान्य नय	द्रव्यार्थिक नय ।
सामान्य गुण	जो सब द्रव्यों में फैले हुए है उसे सामान्यगुण कहते है ।
सम्यग्दर्शन	आत्म स्वरूप की सत्य प्रतीति होना, दिन प्रतिदिन समता भाव में उन्नति होना और क्षण क्षण पर परिणामों की विशुद्धि होना, इसी का नाम सम्यग्दर्शन है ।
सम्यग्दर्शन के भिन्नभिन्न शब्द	सद्दृष्टि, श्रद्धान, रुचि, श्रद्धा, गुण प्रीति, दृष्टि, दर्शन, सम्यग्दर्शन, धर्म, सम्यक्, निर्मोह, जिनेन्द्र भक्त, स्पष्टदृष्टया, सुनिश्चितार्थ, दर्शन शरण, जिनभक्त ।
सम्यग्ज्ञान	तत्वार्थ का यथार्थ ज्ञान करना । जो वस्तु जैसी है उसका उसी रुप में बोध करानेवाला ज्ञान ।
सम्यग्दृष्टि	अरिहंत के छोटे भाई । जिस अवस्था में मिथ्यात्व दूर होकर सम्यकत्व का आर्विभाव होता है ।
सम्यक् मिथ्यात्व कर्म	तत्व और अतत्व दोनो में युगपत श्रद्धान उत्पन्न करनेवाला कर्म सम्यक मिथ्यात्व कर्म है ।
सम्यक्त्व प्रकृति कर्म	जो कर्म सम्यक्त्व को तो नहीं रोकता, किंतु उसमें चल, मलिन और अगाढ़ दोष उत्पन्न करता है वह सम्यक्त्व प्रकृति है (मोहनीय)
सम्यक् दर्शनवाक्	सम्यक् मार्ग प्रवर्तक उपदेश सम्यक् दर्शन वाक् है ।
समचतुरस्त्र संस्थान नामकर्म	सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार जीव के सुन्दर, सुडौल और समानुपातिक शरीर बनानेवाले कर्म को समचतुरस्त्र संस्थान नाम कर्म कहते है ।
सम्यक् एषणा	योग्य आहार का ग्रहण ।
समाधि	किसी प्रकार का विकल्प न होना समाधि है । जिन्हे सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र या उसकी परि पूर्णता होती है, समाधि कहलाती है ।
संबंध के नाम	साध्यसाधक, बंध्य-बंधक , एक दूसरे उपकारक, वस्तु स्वभाव ।
समुद्दिष्ट	भेद को रखकर संख्या निकालने को समुद्दिष्ट कहते है ।
सम्यक्त्व मार्गणा	जिनेन्द्र देव के द्वारा उपदिष्ट ६ द्रव्य, ५ आस्तिकाय, ९ पदार्थ का आज्ञा या अधिगम से श्रद्धान करना सम्यक्त्व मार्गणा है ।
सम्यक्त्व गुण	श्रद्धा गुण ।
सम्यक्	सच्चे, समीचीन ।
सम्यक्त्व मरण	सम्यक्त्व के छुटे बिना होने वाला मरण सम्यक्त्व मरण है।
समिति	प्रवृत्तिगत सावधानी । प्रवृत्ति में प्रमाद का अभाव होना ।

समाधि मरण	धर्मध्यान और शुल्क ध्यान के साथ होने वाले मरण को समाधिमरण कहते है ।
सम्यक् मिथ्यादृष्टि	जिन जीवों में श्रद्धान और अश्रद्धान भाव युगपत पाये जाये वे सम्यग् - मिथ्या दृष्टि है ।
समुद्घात	वेदना आदि के निमित्तो से मूल शरीर को छोडे बिना आत्म प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना समुद्घात कहलाता है।
समवशरण	भगवान की धर्म सभा ।
समाचार	सम्यक् आचार को समाचार कहते है । अथवा शिष्य जनो के द्वारा जिस क्रिया कलाप का आचरण किया जाता है वह समाचार है । रागद्वेष का अभाव समाचार कहलाता है।
साम्राज्य	स्वर्ग से च्युत होकर तीन ज्ञान के साथ मनुष्य जन्म धारण करना तथा कुमार काल बीतने पर षटखण्ड पृथ्वी का अधिपति होना ।
समवायांग	इसमें समस्त द्रव्यों के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि की अपेक्षा पारस्परिक सादृश्य का वर्णन है । (यह द्वादशांग का चौथा अंग है)
समव्याप्ति	दोनों ओर के सहचर्य नियम को समव्याप्ति कहते है ।
सम	एक रूप ।
समीर	वायु ।
समदत्ति	साधर्मी गृहस्थ के लिये कन्या, भूमि, सुवर्ण, धन-धान्यादि देना ।
समीचीन	श्रेष्ठ, उत्तम, सच्चा ।
समल	अभूतार्थ ।
समनस्क	मन सहितजीव (संज्ञी)
साम्पराय	कषाय ।
साम्परायिक आश्रव	क्रोधादिक विकारों के साथ होनेवाले आश्रव को साम्परायिक आश्रव कहते है ।
सम्मूर्छन	जो वनस्पति स्वयं ही उग आती है वह सम्मूर्छन कही जाती है ।
स्मृति	मुखपाठ (कंठस्थ) । पूर्व में जो पदार्थ जाना था उसके स्मरण मात्र को स्मृति कहते है । गणधारों की वाणी को भी स्मृति कहते है ।
समर्थना	युक्ति, तर्क, आगम से धर्म प्रभावना दृढ करना ।
समभिरूढ नय	एक शब्द के अनेक अर्थो में से प्रधान अर्थ को ग्रहण करनेवाला नय समाभिरूढ है ।
सामान्य तत्वार्थ श्रद्धान	पर भावों से भिन्न अपने चैतन्य स्वरूप को आपरूप श्रद्धान करना सामान्य तत्वार्थ श्रद्धान है ।

समता	जीवन -मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दुख, आदि में हर्ष-विषाद नहीं करना, समान भाव रखना, समता है । इसे ही सामायिक कहते है । सम के भाव को समता कहते है । सम्यक् भाव को समता कहते है ।
संयोग रूप	संश्लेष रूप ।
स्याद्वाद	स्यात् अर्थात कथंचित विवक्षित प्रकार से अनेकांत रूप बोलना सो स्याद्वाद है । विभिन्न अपेक्षाओं से वस्तुगत अनेक धर्मोका प्रतिपादन ।
स्याद्वादवेदी वृद्ध	अनुभवी।
सयोग केवली गुणस्थान	जो केवली योग सहित होते है उन्हे सयोग केवली कहते है और उनके स्थान को सयोग केवली गुणस्थान कहते है ।
सूर्य-प्रज्ञप्ति	इसमें सूर्य की आयु, गति, वैभव आदि का वर्णन है ।
स्यात् अस्ति	अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा हर वस्तु का अस्तित्व होता है वह स्यात अस्ति है ।
स्यात् नास्ति	जिस प्रकार प्रत्येक वस्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से अस्तित्ववान है वैसे ही वह दूसरे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से नहीं भी है ।
स्यात् अस्ति-नास्ति	वस्तु में अस्तित्व धर्म भी है नास्तित्व धर्म भी है । उसमें किसी अपेक्षा से अस्तित्व भी है और किसी अपेक्षा से नास्तित्व भी है ।
स्यात अवक्तव्य	वस्तु के अस्तित्व और नास्तित्व दोनो धर्म एक साथ रहते है इस सहाव स्थिति को अभिव्यक्ति देनेवाला शब्द है अवक्तव्य ।
स्यात्	कथञ्चित् नय अपेक्षा से वाद -वस्तु का स्वभाव कथन ।
सराग सम्यग्दर्शन	धर्मानुराग युक्त सम्यग्दर्शन सराग सम्यग्दर्शन है, प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य आदि गुणो की अभिव्यक्ति इसका मुख्य लक्षण है ।
सराग सम्यक्त्व	असंयत से सूक्ष्म साम्पराय पर्यंत चारित्र मोह के उदय सहित "तत्वज्ञ" आत्मा में क्षमा आदि प्रगट लक्षण वाला सम्यक्त्व है वह सराग सम्यक्त्व है ।
सरस्वती	जिनागम और जिनवाणी सरस्वती है ।
सुरेन्द्रत्व	पारिव्राज्य के फल स्वरूप देवलोक में इन्द्र के रूप में जन्म लेकर विविध भांति के भोगोपभोग को भोगना सुरेन्द्रत्व है।
सीरी	भागीदार, साथींदार ।
सुरा	मदिरा ।

सारस्वताचार्य	वह आचार्य है जिन्होंने प्राप्त हुई श्रुत परम्परा का मौलिक प्रणयन और टीका साहित्य द्वारा प्रचार और प्रसार किया।
सुवर्ण	सोना।
सल्लेखना	मृत्यु के निकट होने पर सभी प्रकार के विषाद को छोडकर समतापूर्वक देह त्याग करना ही समाधिमरण या सल्लेखना है। काया और कषायों को अच्छी तरह से कृश करना सल्लेखना है।
स्वाध्याय तप	आलस्य त्यागकर ज्ञान की आराधना करना स्वाध्याय तप है। अपने आत्मा का हित करनेवाला अध्ययन करना स्वाध्याय है।
स्वाध्याय	सत् शास्त्र का वाचना, मनन करना या उपदेश देना आदि स्वाध्याय कहा जाता है, जो सर्वोत्तम तप माना गया है। मोक्ष मार्ग में इसका बहुत ऊंचा स्थान है।
स्वस्थितिकरण	अपनी आत्मा का अपनी आत्मा में स्थित करना स्वस्थितिकरण है।
स्वात्मसंबधीवात्सल्य	परीषह और उपसर्गादि के द्वारा पीड़ित होते हुए भी जो किसी शुभाचार में, ज्ञान में और ध्यान में शिथिलता नहीं आने देना वह स्वात्म सम्बन्धी वात्सल्य है।
स्वेद	पसीना।
स्वगत रूपस्थ ध्यान	अपने आत्मा के स्वरूप चिंतन को स्वगत रूपस्थ ध्यान कहा है।
स्वमुखोदयी प्रकृति	जो अपने ही रूप उदयफल देकर नष्ट हो जाय वह स्वमुखोदयी है।
सार्वातिचार प्रतिक्रमण	दीक्षा ग्रहण काल से लेकर सन्यास ग्रहण काल तक जितने भी दोष होते है वे सार्वातिचार कहलाते है। उनका प्रतिक्रमण सार्वातिचारी प्रतिक्रमण है।
सव्यभिचारी	दोषी।
स्वादु	मधुर - अतीन्द्रिय सुखरूप।
स्वाभाविक ज्ञान	अतीन्द्रिय ज्ञान।
सर्व विरति	पापों का परिपूर्ण त्याग / महाव्रत।
स्वदार संतोषव्रत	ब्रह्मचर्याणुव्रत।
स्वकाल	पर्याय।
स्वगत तत्त्व	निज आत्मा स्वगत तत्त्व है।
स्वभाव	गुण।
सर्वावधि अवधि ज्ञान	अवधिज्ञानावरण कर्म के उत्कृष्ट क्षयोपशम से युक्त ज्ञान सर्वावधि अवधिज्ञान कहलाता है।
सर्वघाति कर्म	सर्वघाती कर्म आत्मा के गुणो का पूर्णतः घात करते है।

सर्वधन (पदधन) सम्पूर्ण समयों में पाये जाने वाले समस्त परिणामों के समूह को सर्वधन कहते है ।
स्वस्थान अप्रमत्त जो प्रमत्त - अप्रमत्त अवस्था में डोलते रहे, वे स्वस्थान अप्रमत्त है ।
स्वस्थपना अच्छी हालत ।
स्वरूपाचरण चारित्र शुद्ध आत्मानुभव से अविनाभावी चारित्र विशेष को स्वरूपाचरण चारित्र कहते है । अथवा आत्मस्वरूप में लीन होना ।
सार्व सब का हित करनेवाले।
सर्वतोभद्र पूजा चारों प्रकार के देवों द्वारा की जाने वाली पूजा ।
स्वास्ति तेरा कल्याण हो ।
सावद्य पाप युक्त वचन ।
सावद्य योग कषाय से अनुरंजित योग, प्रवृत्ति को सावद्ययोग कहते है।
स्वाश्रित जिस द्रव्य के अस्तित्व में जो भाव पाये जाये, उसी द्रव्य में उसी का स्थापन कर किंचिन्मात्र भी अन्य कल्पना नहीं करने को स्वाश्रित कहते है ।
स्वतःसिद्ध वस्तु किसी ईश्वर आदि से उत्पन्न नहीं है । स्वतः स्वभाव से स्वयं सिद्ध है ।
स्वतः सिद्धत्व इसको जैनागम में पारिणामिक भाव, जीवत्व भाव, ज्ञायक भाव, सामान्य भाव, इत्यादिक अनेक नामों से कहा है ।
स्वातानुभूति ज्ञान चेतना ।
सव्यभिचारी दोषी ।
सर्वज्ञ परमगुरु ।
स्वाति संस्थान नामकर्म सर्प की वामी की तरह नाभि के उपर पतले तथा नीचे की ओर मोटे आकार का शरीर बनानेवाले कर्म स्वाति संस्थान नामकर्म है ।
सविपाक द्रव्य निर्जरा स्थिति के पूर्ण होने पर कर्मो के सुख दुःखात्मक फल देकर विलग होने को सविपाक निर्जरा कहते है ।
स्वाद्य बर्फी, लाडू, वगैरह ।
स्वभाव पर्याय जो पर्याय पर सम्बन्ध के निमित्त के बिना स्वभाव से ही होती है उसे स्वभाव पर्याय कहते है ।
स्वोपज्ञ मौलिक अर्थात स्वरचित ।
स्वशरीर संस्कार त्याग अपने शरीर के शृंगार का त्याग ।
सासादन सम्यक्त्व जो सम्यकत्व से गिरकर मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं हुआ है । उस स्थिति को सासादन सम्यक्त्व कहते है ।

सासादन गुणस्थान	जो सम्यक्त्व की आसादना (विराधना) सहित होता है उसे सासादन सम्यक्त्व कहते है और उसके स्थान को सासादन सम्यकत्व गुणस्थान कहते है ।
सासादन	सम्यक्त्व की विराधना या विचलन ।
सासन	सासादन गुण स्थान । जो जीव सम्यक्त्व से तो च्युत हो गया है किंतु मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं हुआ है उसको सासन कहते है ।
सुस्वर नामकर्म	कर्णप्रिय स्वर उत्पन्न करानेवाला कर्म सुस्वर नामकर्म है।
सुसर्व सामग्री	सुन्दर समस्त सामग्री (सम्यक्त्त्व, अणुव्रत, महाव्रत, शुक्लध्यान प्राप्ति)
सुषिर	बासुरी वगैरह के शब्द को सुषिर कहते है ।
सहेतुक प्रत्याख्यान	उपसर्ग आदि के निमित्त से उपवास आदि करना यह सहेतुक प्रत्याख्यान है ।
सहजानन्द	आत्मा का सहज स्वभाव ।
संक्षेप सम्यक्त्व	संक्षिप्त तात्विक विवेचन के श्रवण से उत्पन्न श्रद्धान संक्षेप सम्यक्त्व है ।
सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान	जहाँ पर जीवों के मात्र सूक्ष्म लोभ कषाय का उदय रहता है उसे सूक्ष्म साम्पराय कहते है और उसके स्थान को सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान कहते है ।
सूक्ष्म	जिस नाम कर्म के उदय से जीव न तो स्वयं किसी से बाधित होता है और न ही दूसरों को बाधिक करता है उसे सूक्ष्म कहते है । अर्थात जो किसी भी इन्द्रिय का विषय न बने जैसे कार्मण स्कंध ।
सूक्ष्म दोष	स्थूल दोषों की उपेक्षा कर केवल सूक्ष्म दोषों की आलोचना करना सूक्ष्म दोष है ।
सूक्ष्म शरीर	जो शरीर दूसरों को न तो रोके और न स्वयं दूसरे से रुके उसको सूक्ष्म शरीर कहते है ।
सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति	इसमें मन, वचन और काय रूप योगों का निरोध और श्वासोच्छवास जैसी सूक्ष्म क्रिया भी निरुद्ध हो जाती है उसे सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति कहते है ।
सूक्ष्म-स्थूल	जो आंखो से नहीं दिखते है, किंतु शेष इन्द्रियों के द्वारा अनुभव किये जाते है जैसे हवा, गंध, रस, शब्द आदि। उसे सूक्ष्म स्थूल कहते है ।
सूक्ष्म -सूक्ष्म स्कन्ध	अत्यन्त सूक्ष्म द्वयणुक स्कंध को सूक्ष्म सूक्ष्म स्कंध कहते है, यह स्कंधो की अन्तिम इकाई है

सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय वस्तु के एक क्षणवर्ती पर्यायों को विषय बनाता है उसे सूक्ष्म ऋजु सूत्र नय कहते है ।

सूक्ष्म कायिक जीव जिन जीवों का पृथ्वी से, जल से आग से और वायु से प्रतिघात नहीं होता उन्हें सूक्ष्म कायिक जीव कहते है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव जो न स्वयं बाधित हो और न बाधा पहुँचाये उसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव कहते है ।

सूक्ष्म नाम कर्म सूक्ष्म अर्थात दूसरों को बाधित एवं दूसरों से बाधित न होनेवाले शरीर को उत्पन्न करनेवाला कर्म सूक्ष्म नाम कर्म है ।

सूक्ष्म जीव सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से सूक्ष्म पर्याय में उत्पन्न जीवों को सूक्ष्म जीव कहते है ।

सूत्र इसमें ३६३ मतों का पक्ष-प्रतिपक्ष रूप का वर्णन है । या धागा, साधन, संकेत । या बारह अंग और १४ पूर्व को सूत्र कहते है ।

स्त्री वेद स्त्री स्वभाव का होना, मायाचार की अधिकता, नेत्र विभ्रम आदि द्वारा पुरुष के साथ रमने की इच्छा ।

सूत्र सम्यक्त्व मुनियों के चारित्र निरुपक शास्त्रों के श्रवण से उत्पन्न श्रद्धान सूत्र सम्यक्त्व है ।

सूत्र कृतांग इसमें ज्ञान, विनय और व्यवहार धर्म क्रिया का वर्णन है । यह द्वादशांग का दूसरा अंग है ।

सूत्रोपसंपत सूत्र पठन में प्रयत्न करना सूत्रोपसंपत है ।

ष

षड्ज स्वर जो स्वर कंठ देश में स्थित होता है उसे षड्ज कहते है । गरुड़ का स्वर षड्ज है ।

षष्ठ भक्त दो उपवास ।

षटकाय के जीव ६ प्रकार के जीव जैसे १) पृथ्वी २) जल ३) अग्नि ४) वायु ५) वनस्पति ६) त्रसकाय जीव .

षड्ज नासिका, कंठ, उर, तालु, जीभ और दांत इन छह के स्पर्श से षड्ज स्वर उत्पन्न होता है इसी से उसे षड्ज कहते है

ह

हिंसा रागादिक की उत्पत्ति ही हिंसा है । वास्तव में अशुद्धोपयोग छेद है और वही हिंसा है । रागादि का नाम ही हिंसा है, अधर्म है, और

	अव्रत है ।
ंसा नंदी रौद्र ध्यान	दूसरे प्राणियों को कष्ट देकर, कष्ट दिलाकर व कष्ट देते हुवे जानकर, जिनके मन में बड़ी प्रसन्नता रहती है वह हिंसानंदी रौद्रध्यान है ।
हरण्य	चांदी ।
ीं	यह बीजाक्षर मंत्र चौबीस तीर्थंकरों का वाचक है ।
ुताशन	अग्नि ।
ेतु विचय धर्म ध्यान	तर्क द्वारा विशेष उहापोह पूर्वक स्याद्वाद सिंद्धात को श्रेयस्कर मान उसकी उपादेयता का विचार हेतु विचय धर्मध्यान है । अथवा तर्क का अनुसरण पुरुष स्याद्वाद की प्रक्रिया का आश्रय लेते हुवे समीचीन मार्ग का आश्रय करते है, इस प्रकार चिन्तन करना सो हेतु विचय धर्म ध्यान है ।
ुंडक संस्थान नामकर्म	अनिर्दिष्ट आकार को हुंडक कहते है । ऐसे विचित्र शरीर बनानेवाले कर्म को हुंडक संस्थान नामकर्म कहते है ।
हीन दोष	ग्रंथ, अर्थ और काल के प्रमाण से रहित वंदना करना हीन दोष है।
हीलित दोष	वचनों द्वारा आचार्यादि का पराभव करके वन्दना करना ।
हीनाधिक विनिमान	हीनाधिक मानोन्मान - माप तौल के साधन बॉटआदि में कमती बढ़ती रखकर व्यापार में अधिक लेने और कम देने की नियत रखना हीनाधिक विनिमान है ।
हेयतत्व	सातों तत्वों में से (१) अजीव (२) आश्रव और (३) बंध ये तीनों तो हेय तत्व है ।
हीयमान अवधिज्ञान	कृष्ण पक्ष की चन्द्र कलाओं की तरह निरंतर घटते रहनेवाला ज्ञान हीयमान अवधिज्ञान है ।
हस्तेन किंचित ग्रहण अंतराय	मुनिद्धारा भूमि पर पडे स्वर्ण रत्नादि किसी वस्तु को हाथ से ग्रहण करने पर हस्तेन किंचित ग्रहण अंतराय है ।

क्ष

क्षणिकादि मत	बौद्धादि मत ।
क्षीण मोहगुण स्थान	जहाँ जीवों के सम्पूर्ण मोहनीय का क्षय हो जाता है उसे क्षीण मोह कहते है और उनके स्थान को क्षीण मोह गुण स्थान कहते है ।
क्षीण मोह	क्षीण मोह अर्थात बारहवें गुणस्थान वर्ती ।
क्षांति	क्षमा अथवा सहनशीलता ।
क्षिति शयन	घास, लकड़ी का फलक, शिला इत्यादि पर सोना क्षितिशयन है ।

क्षति	हानि ।
क्षुधा	भूख ।
क्षिप्र	तीव्र गति से गतिशील वस्तु का अवग्रह आदि होना ।
क्षपक श्रेणी	चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय के लिये किया जाने वाला आरोहण ।
क्षपक	क्षपक श्रेणी में आरुढ़ अपूर्वकरण से सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान वर्ती साधक ।
क्षमा	क्रोध कषाय के कारण परिणामों के कलुषित न होने देने को ।
क्षमापन में	समाधि भक्ति का पाठ प्रचलित है ।
क्षुद्रभव	एक लब्ध्य पर्याप्तक जीव एक अन्तर्मुहूर्त में ६६३३६ बार मरण और उतने ही भवों में जन्मों को धारण करता है इन भवों को क्षुद्रभव कहते है ।
क्षायिक सम्यक्त्व	दर्शन मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षय हो जाने पर जो निर्मल श्रद्धान होता है उसको क्षायिक सम्यक्त्व कहते है ।
क्षायिक सम्यग्दर्शन	सात कर्म प्रकृतियों के क्षय से उत्पन्न सम्यक्त्व क्षायिक सम्यक्त्व कहलाता है अर्थात क्षायिक सम्यग्दर्शन ।
क्षायोपशमिक ज्ञान	प्रतिपक्षी कर्म की इस अवस्था में होने वाले ज्ञान को क्षायोपशमिक ज्ञान कहते है ।
क्षायिक ज्ञान	केवलज्ञान ।
क्षायिक भाव	कर्मो के क्षय से उत्पन्न भाव क्षायिक भाव है । अर्थात केवलज्ञान ।
क्षायोपशमिक भाव	कर्मो के क्षयोपशम से उत्पन्न भाव को क्षायोपशमिकभाव कहते है ।
क्षायोपशमिक	वैभाविक ।
क्षायोपशमिक विभंग	मनुष्य और तिर्यंचो के विपरीत अवधिज्ञान को क्षायोपशमिक विभंग कहते है ।
क्षयोपशम लब्धि	तत्व विचार की शक्ति की उपलब्धि क्षयोपशम लब्धि है ।
क्षयोपशम	कर्मो के एक देश क्षय तथा एक देश उपशम को क्षयोपशम कहते है ।
क्षयोपशम सम्यग्दर्शन	सम्यकत्व विरोधी कर्मो कुछ अंशो में क्षय और कुछ अंशो में उपशम से उत्पन्न सम्यक्त्व क्षयोपशम सम्यक्त्व कहलाता है । इसे वेदक सम्यग्दर्शन भी कहते है ।
क्षीरस्रावी रस ऋद्धि	जिस ऋद्धि के प्रभाव से मुनि के हस्त तल पर रखे हुए रुखे आहारादिक तत्काल ही दुग्ध रूप परिणत हो जाते है वह क्षीर स्रावी रस ऋद्धि है ।
क्षार जल	मूत्र ।

...ल औषधिऋद्धि (क्षुल्लक)	जिस ऋद्धि के प्रभाव से योगी के लार, कफ आदि भी जीवों के रोगों को नष्ट कर देते है वह क्ष्वेल औषधि ऋद्धि है ।
...ल्लिका	११ वीं प्रतिमाधारी स्त्रियां क्षुल्लिका कहलाती है उनके एक साड़ी और एक खण्ड वस्त्र होता है ।
...त्रवृद्धि	लोभ वश सीमा को बढालेना ।
...त्रोपसंपत समाचार	तप आदि की जिस स्थान में वृद्धि हो उस स्थान पर रहना क्षेत्रोपसंपत समाचार है ।
...त्रानुगामी अवधिज्ञान	जो अवधिज्ञान क्षेत्र से क्षेत्रांतर तक अनुगमन करे उसे क्षेत्रानुगामी अवधिज्ञान कहते है ।
...त्र भवानुगामी अवधिज्ञान	जो अवधिज्ञान क्षेत्रान्तर और भवान्तर तक अनुगमन करे उसे क्षेत्र भवानुगामी अवधिज्ञान कहते है ।
...त्र	द्रव्यों के प्रदेशों - अवयवो को क्षेत्र कहते है । व्यवहार दृष्टि से द्रव्य का आधार भी क्षेत्र कहलाता है ।
...त्र (सिद्धअनुयोगद्वार)	वर्तमान भाव की दृष्टि से सभी सिद्ध जीवों के सिद्ध होने का स्थान एक ही है - सिद्ध क्षेत्र अर्थात आत्म प्रदेश या आकाश प्रदेश, भूतकाल की दृष्टि से इनके सिद्ध होने का क्षेत्र एक नहीं है ।
...त्र सामायिक	रम्य सुन्दर क्षेत्रों में और असुन्दर अप्रिय क्षेत्रों में समता भाव रखना क्षेत्र सामायिक है ।
...त्र स्तव	चम्पापुरी, पावापुरी, सम्मेद शिखर आदि क्षेत्रो की स्तुति करना क्षेत्र स्तव है ।
...त्र प्रतिक्रमण	क्षेत्र के आश्रय से होनेवाले अतिचार से निवृत्त होना क्षेत्र प्रतिक्रमण है ।

त्र

...ाता	रक्षक ।
...यी	इस राज विद्या से शास्त्रानुसार धर्म और अधर्म को समझकर अधर्म छोड़ धर्म का आश्रय लेना ।
त्रिभुवन	तीन लोक अर्थात उर्ध्वलोक, मध्यलोक,अधोलोक ।
त्रियोग	मन, वचन काय रूप तीनों योग ।
त्रस जीव	द्विइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पांच इन्द्रिय जीव को त्रस जीव कहते है ।
त्रस नाम कर्म	जिस कर्म के उदय से द्विइन्द्रियादि जीवों में जन्म हो उसे त्रस

	नामकर्म कहते है ।
त्रिवलित दोष	वन्दना करते समय कमर, गर्दन और हृदय इन अंगो में भंगबलि पड़जाना या ललाट में ३ सल डाल कर वंदना करना ।
त्रिरत्नवंत	जिनके पास ये त्रिरत्न (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र) पाये जाते है वे त्रिरत्नवंत कहलाते है ।
त्रिचूलिका अधिकार	१. नव प्रश्न २. पंचभागहार ३. दशकरण इन तीनों का चिंतन करना त्रिचूलिका है ।

ज्ञ

ज्ञानी	जो अपने को सामान्य रूप संवेदन करे वह ज्ञानी है ।
ज्ञायक द्रव्य	ध्रुव स्वभाव ।
ज्ञेयोपजीवी	ज्ञेय के आधार से जीने वाला अथवा क्षेय का ही अनुजीवी गुण ।
ज्ञातृधर्म कथा	इसमें तीर्थकरों एवं गणधरों के जीवन सम्बन्धी अनेक आख्यान एवं उपाख्यानों का वर्णन है । यह द्वादशांग का छठा अंग है ।
ज्ञान प्रवाद पूर्व	इसमें पांच ज्ञान और तीन प्रकार के अज्ञानों का स्वरूप, इनकी उत्पत्ति और ज्ञानों के स्वामी का वर्णन है । यह १४ पूर्व में ५ वां पूर्व है ।
ज्ञान के नाम	ज्ञान, बोध, अवगम, मनन, जगत, भानु, जगतज्ञान ।
ज्ञान गुण या ज्ञानभाव के दूसरे नाम	स्वरूपाचरण, स्वसंवेदन, आत्मानुभव, शुद्धोपयोग, और शुद्धनय ।
ज्ञान मार्गणा	जो जानता है और जिसके द्वारा जाना जाय या जाननामात्र ज्ञान है ।
ज्ञानाचार	सम्यग्ज्ञान के आठों अंगो का निर्दोष रूप से पालन करना ज्ञानाचार है ।
ज्ञानावरण कर्म	आत्मा के ज्ञान गुण को आवृत / आच्छादित करता है वह ज्ञानावरण कर्म है ।
ज्ञान	(सिद्ध अनुयोग द्वार) - वर्तमान की दृष्टि से एक मात्र केवलज्ञानी ही सिद्ध होते है । अतीत की दृष्टि से दो, तीन और चार ज्ञानवाले भी सिद्ध होते है ।
ज्ञानातिचार	अक्षर, शब्द, वाक्य इत्यादि को कम करना, बढ़ाना, पीछे का संदर्भ आगे लाना, आगे का पीछे करना, विपरित अर्थ का निरूपण करना ये सब ज्ञानातिचार है ।
ज्ञानोपयोग	पदार्थो के विशेष प्रतिभास को ज्ञानोपयोग कहते है इसे साकार उपयोग भी कहते है अर्थात सविकल्प ।

ज्ञानात्मक विकल्प भावनय ।

ज्ञान चेतना जो चेतना पदार्थो को विशेषता से साकार रूप प्रदर्शित करे।

ज्ञान और दर्शन मे अन्तर ज्ञान साकार है और दर्शन निराकार है ।

ज्ञान की विनय ज्ञान को बहुत मान व आदर से ग्रहण करना व स्मरण करना, मनन करना आदि ज्ञान की विनय कही जाती है ।

श्र

श्रेणी चारित्र मोहनीय कर्म के उपशम के लिये किया जानेवाला आरोहण श्रेणी है ।

श्रुतधराचार्य वह आचार्य है जिन्होंने सिद्धांत, साहित्य, कर्म साहित्य, अध्यात्म साहित्य का ग्रंथन आचार्यों के चरित्र और गुणों का जीवन में निर्वाह करते हुवे किया है । यह युग संस्थापक और युगान्तकारी आचार्य है । इनमें अंग और पूर्व साहित्य का ज्ञान था ।

श्रुत शास्त्र ज्ञान - १४ पूर्व शास्त्र ।

श्रुर्त मायावी ।

श्रुतस्कंध द्वादशांग शास्त्र ।

श्रुति गुरु आदि से धर्म का श्रवण करना । केवली की दिव्य ध्वनि ।

श्रुतावतार भगवान महावीर के पश्चात केवली और श्रुत केवलियों की मूल परम्परा को ही श्रुतावतार कहा गया है ।

श्रुत अतिचार द्रव्य शुद्धि, क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि, भाव शुद्धि के बिना शास्त्र का पढ़ना यह श्रुतातिचार है ।

श्रुत ज्ञानावरण श्रुत ज्ञान को आवृत तथा हीनाधिक करते है वह श्रुत ज्ञानवरण है।

श्रुत केवली श्रुत पारंगत द्वादशांग के ज्ञाता मुनि । जो जीव सर्व श्रुतज्ञान को जानता है उसे जिनदेव श्रुत केवली कहते है ।

श्रुत देवता जिनवाणी ।

श्रुतज्ञान मतिज्ञान के बाद शब्द संकेत आदि के सहारे होनेवाला विशेष ज्ञान श्रुतज्ञान है । श्रुतज्ञान शब्द प्रधान है । श्रुत ज्ञान स्व और पर दोनो का बोध कराता है । श्रुतज्ञान वचनात्मक है । श्रुत ज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है । श्रुतज्ञान कार्य है । अथवा इन्द्रियों द्वारा विवक्षित पदार्थ को ग्रहण करके उससे सम्बन्धित अन्य पदार्थों को जानना श्रुत ज्ञान है ।

श्रद्धा गुण — जिस गुण की निर्मल दशा प्रगट होने से स्वयं के शुद्ध आत्मा का प्रतिभास (यथार्थ प्रतीति) होता है उसे श्रद्धा गुण कहते है ।

श्रद्धान प्रायश्चित — मिथ्यात्व को प्राप्त हुये जीव के द्वारा पुनः स्थिर होकर आप्त आगम और पदार्थ के श्रद्धान पूर्वक महाव्रत स्वीकार किया जाना "श्रद्धान प्रायश्चित " है ।

श्रमण — यति, मुनि व अनगार को श्रमण कहते है ।

श्रावक — श्र - श्रद्धा, व- विवेक, और क - क्रिया ।
पंचमा गुणस्थान वर्ती संयमासंयमी ।

श्रावक धर्म — श्रावक के द्वारा करने योग्य अनिवार्य कर्तव्यों को श्रावक धर्म कहते है । वे चार है - दान, पूजा, शील और उपवास।

श्वासोच्छवास वर्गणा — श्वास, प्रश्वास के रूप में परिणत होनेवाले पुद्‌गल श्वासोच्छवास वर्गणा है ।

ऋ

ऋजु — सरल ।

ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान — जो ऋजुमन के द्वारा विचारे गये, ऋजु (सरल) बचन के द्वारा कहे गये और ऋजु काय के द्वारा अभिव्यक्त मनोगत विषय को जानता है वह ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान है ।

ऋजुसूत्रनय — वस्तु की वर्तमान पर्याय मात्र को ग्रहण करनेवाला विचार ऋजुसूत्र नय है । जैसे देव को देव व मनुष्य को मनुष्य कहना ।

ऋजु स्वभावी — सरल प्रकृति के ।

ऋण दोष — किसी से उधार लेकर आहार देना । इसे प्रामृष्य दोष भी कहते है ।

ऋद्धि — तपश्चरण के प्रभाव से योगिजनों को प्राप्त चमत्कारिक शक्ति ऋद्धि कहलाती है ।

ऋद्धि गौरव दोष — चातुर्वर्ण्य संघ में भक्त हो जावेगा इस अभिप्राय से वंदना करना ।

ऋषभस्वर — जो स्वर शिरोदेश में स्थित होता है उसे ऋषभ स्वर कहते है (गौ का स्वर वृषभ)

ऋषि — ऋद्धिधारी मुनिराजों को ऋषि कहते है ।